(लेखक; वृद्धावस्था में)

चारु-चरित-माला—१८

आत्मचरित-चम्पू

[गद्यपद्यमयी सचित्र आत्मकथा]

प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र'

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

१॥)

प्रकाशक

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (बिहार-प्रान्त)

卐

चारु-चरित-माला

卐

मुद्रक

हनुमानप्रसाद, विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय

विक्रमसंवत् १९९६ 卐 सन् १९३९ ई०
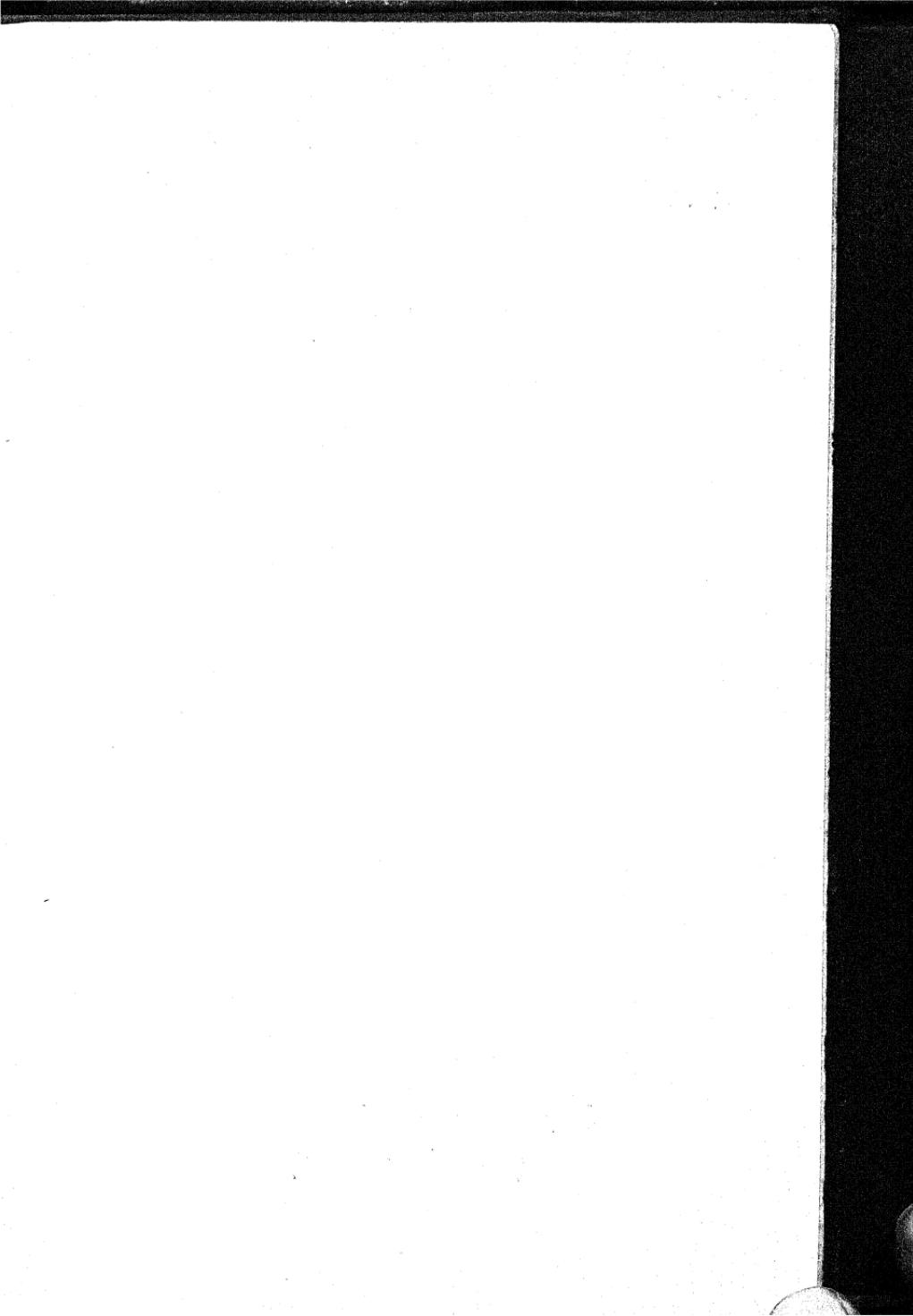
कैलासवासी पंडित राजेश्वर मिश्रजी
(लेखक के पूज्य पिता)

समर्पण

श्रीमान् ऋषिस्वरूप, कैलासवासी, परमपूज्य पिता

श्री १०८ राजेश्वर मिश्रजी

यह शरीर आपकी सम्पत्ति है और इसकी कथा भी आप ही की वस्तु है। इसलिये इस शरीर की कहानी (आत्मकथा) को आप ही के परम पवित्र पदपद्मों में सभक्ति समर्पित कर आशा करता हूँ कि आपके आशीर्वाद से मेरे सकल मनोरथ सिद्ध होंगे। अब आप शिवस्वरूप हो गये हैं, इसलिये आपका शुभाशीर्वाद अवश्य सफल होगा। तथास्तु श्रीशङ्करप्रसादात्।

आपका—

वात्सल्यभाजन पुत्र

अक्षयवट
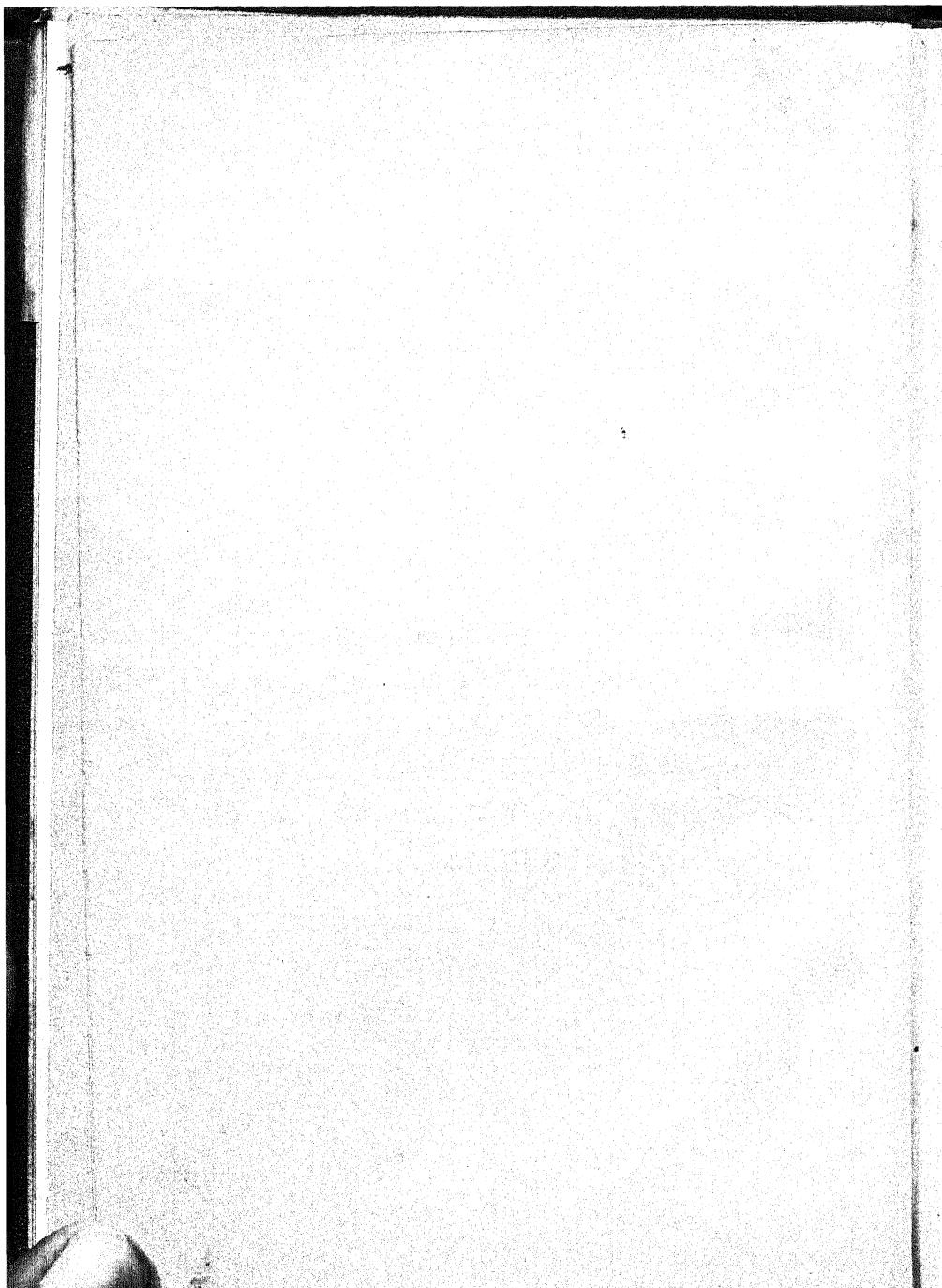
सुनिये

आत्मचरित महापुरुषों का लिखा जाना चाहिये जिससे सर्वसाधारण का लाभ हो। क्षुद्र जनों के आत्मचरित से कुछ लाभ नहीं होता। इसी लिये मेरी तनिक भी इच्छा नहीं थी कि मैं अपनी नीरस कहानी लिखूँ। किन्तु मेरे सब प्रकार सहायक तथा प्रेमी, विद्यापति प्रेस (लहेरियासराय) और पाठशाला प्रेस (पटना) एवं इन दोनों स्थानों के पुस्तक-भंडार के स्वामी तथा सचित्र मासिक पत्र 'बालक' के सम्पादक बाबू रामलोचनशरणजी बिहारी की आग्रहभरी आज्ञा तथा मेरे परम स्नेही एवं हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक बाबू शिवपूजनसहायजी के अनिवार्य अनुरोध से मैंने इसे लिखने का साहस किया है। यद्यपि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि रुग्णावस्था के कारण अच्छा नहीं लिख सकूँगा तथापि पूर्वोक्त कारणों से विवश हूँ। अपनी अगणित त्रुटियों के लिये क्षमा-प्रार्थी हूँ।

श्रीवसन्तपंचमी
१९९४ वि. सं.

विनीत
अक्षयवट

विषयानुक्रमणिका

आत्मचरित-चम्पू

श्रीगणेशायनमः

प्रथम अध्याय

मेरी जन्मभूमि

श्रीराधाधव माधव, श्रीसीताधव धीर।
त्वां नमामि शिरसा सदा, धृतमत्स्यादि शरीर ॥१॥
कुण्डलमण्डित श्रवण युग, पीतवसन, जगदीश।
वासं कुरु सह राधया, मम हृदये गोपीश ॥२॥

श्री परम पवित्र पुरी 'काशी' और प्राचीन ऐतिहासिक नगर 'पटना' के बीच 'भोजपुर' नामक एक महाप्रान्त है जिसकी राजधानी आजकल 'डुमरावँ' है। यहाँ उज्जैन क्षत्रिय लोग राज करते आ रहे हैं। आजकल यहाँ के सिंहासन पर श्रीमान् महाराज रामरणविजय प्रसाद सिंह बहादुर सुशोभित हैं।

'भोजपुर' नाम के विषय में अनेक मत हैं। कुछ लोगों का कथन है कि 'भोज' नामक एक राजा हो गये हैं, उन्हीं के नाम से यह प्रान्त प्रसिद्ध हुआ। एक ही कोस के बीच 'पुराना भोजपुर' तथा

'नया भोजपुर' नामक दो ग्राम अलग-अलग बसे हुए हैं। एक से दूसरे का आधा कोस का अन्तर है।

किन्तु पटना-कालेज के प्रधान इतिहासाध्यापक डाक्टर सुविमलचन्द्र सरकार एम्. ए. का कथन है कि यह प्रान्त बहुत ही प्राचीन है। भारतवर्ष के प्राचीन नृपतिगण सैनिकों के भोजन के लिये बहुत-से अन्न आदि भोज्य पदार्थ एकत्र कर यहाँ रखते थे; इसलिये इसका नाम 'भोज्यपुर' था जो काल पाकर अपभ्रंश होने के कारण 'भोजपुर' बना गया।

बहुत-से लोगों का यह कथन है कि धारानगराधीश भोजराज अपने समस्त राज्य का निरीक्षण करते-करते यहाँ भी आ पहुँचे, और यहाँ की उर्वरा भूमि की शोभा देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए, तथा कुछ दिनों तक अपने समस्त अनुचरों के साथ यहाँ निवास किया; इसलिये इस प्रान्त का नाम 'भोजपुर' हुआ।

कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि भोजवंशीय एक क्षत्रिय राजकुमार 'धारा'नगर से आकर यहाँ अपनी राजधानी बनाकर राज्य-शासन करने लगे; इसलिये यह 'भोजपुर' कहलाया। 'नया भोजपुर' में राजभवन-सा एक भग्नावशेष है भी, जिसे लोग 'नवरत्न' कहते हैं। सुनने में आता है, यह नौमंजिला गगनस्पर्शी राजभवन था जिसको पटना के किसी नव्वाब ने ईर्ष्या-वश तोड़वा दिया।

यहाँ प्राचीन समय में एक राजा थे जिनका नाम 'डूमरशाह' था। उन्होंने एक छोटा-सा ग्राम अपने नाम से 'डूमरावँ' बसाया जिसकी

व्युत्पत्ति है—'डूमर + राव'; अर्थात् 'डूमर' हैं 'राव' (राजा) जहाँ उसका नाम 'डूमरावँ'; बीच के 'र'-कार का लोप हो गया *।

कुछ समय के बाद यहाँ एक राजा हुए जिनका नाम 'होरिल सिंह' था। इन्होंने अपने नाम पर एक नगर 'होरिलनगर' डुमरावँ ही से सटा हुआ बसाया। फिर कुछ दिनों के बाद दोनों एक में मिल गये; अनन्तर होरिलनगर लुप्त हो गया और डुमरावँ नाम प्रसिद्ध हो गया। होरिलसिंह का बनवाया हुआ यहाँ नगर से पूरब-दिशा में एक बहुत बड़ा तालाब है जिसका प्रसिद्ध नाम 'पुराना पोखरा' है। यह प्राचीन होने के कारण बहुत जीर्णशीर्ण हो गया था जिसका जीर्णोद्धार स्वर्गीय महाराज सर महेश्वरबख्श सिंह बहादुर के. सी. एस्. आइ. ने करवाया। यह यहाँ के सब तालाबों में बड़ा तथा सुन्दर है। इसके चारों विशाल घाट पत्थर के बने हुए हैं जिनपर बहुत बड़े-बड़े विष्णु-मन्दिर तथा शिव-मन्दिर हैं जिनसे इसकी अपार शोभा हो गई है। यहाँ आने पर जान पड़ता है कि हम किसी बड़े तीर्थ में आ गये हैं।

यह नगर (डुमरावँ) चौकोन है जिसकी लम्बाई-चौड़ाई एक कोस में है। सन् १९३१ ई० की मनुष्यगणना के अनुसार यहाँ की जनसंख्या १४४२१ (चौदह हजार चार सौ इक्कीस) है। ३८१८ घर हैं।

---

* संस्कृत में भी ऐसा होता है—जैसे 'पुनर + रमते' में बीच के रकार का पाणिनिकृत रोरि-सूत्र से लोप हो गया। इस सूत्र का अर्थ है कि 'र' के बाद यदि 'र' हो तो पहले 'र' कार का लोप हो जाता है और पूर्व स्वर का दीर्घ हो जाता है। तब 'पुनारमते' पद सिद्ध हुआ। इसी प्रकार हरिरम्यः, शम्भू राजते इत्यादि।

पुरुष ७६०२, स्त्री ६८१६। हिन्दू १२२०८—पुरुष ६४५६, स्त्री ५७५२। मुसलमान २१६२—पुरुष ११२१, स्त्री १०४१। ईसाई ५१—पुरुष २५, स्त्री २६। चौहद्दी—उत्तर रेलवे-लाइन, दक्खिन डुमरेजिन का बाँध; पूरब और पच्छिम नहर है।

यहाँ अनेक देवमन्दिर हैं। उनमें किले के भीतर 'विहारीजी का मंदिर', पुराना पोखरा पर 'काकीजी का पंचमंदिर' तथा 'राजेश्वरजी का पंचमंदिर' और 'परमहंसाश्रम का शिवालय' देखने योग्य हैं। राज-भवनों में किले के भीतर 'मार्बुल-हाउस'; नगर के बाहर 'मैनेजर-बँगला', 'भोजपुर-कोठी' और 'स्टेशन-बँगला' उत्तम हैं।

तालाब यहाँ छोटे-बड़े सब मिलकर ग्यारह हैं। उनमें पुराना पोखरा, नया पोखरा, बड़ा बाग का पोखरा, रामानुग्रह सिंह का पोखरा अच्छे हैं। नगर में बद्रीनारायण साहु, गंगाप्रसाद साहु तथा चमरू साहु के मकान बड़े सुन्दर और विशाल हैं।

यहाँ एक 'राज-हाई-इंगलिश-स्कूल' है जिसमें मैट्रिक तक पढ़ाई होती है। रिजल्ट भी अच्छा होता है। प्रयाग-संस्कृत-विद्यालय में प्रथमा, मध्यमा एवं आचार्य की पढ़ाई होती है और प्रति वर्ष परीक्षा देकर छात्र उत्तीर्ण होते हैं। इनके अतिरिक्त गर्ल्स स्कूल, गुरुट्रेनिंग स्कूल तथा अपर प्राइमरी, लोअर-प्राइमरी आदि अनेक स्कूल हैं। यहाँ एक पुस्तक-भवन भी है जिसमें विशेषतः हिन्दी-पुस्तकें हैं और प्रधान-प्रधान हिन्दी-पत्र आते हैं। इनके अतिरिक्त अंग्रेजी, बँगला आदि की भी कुछ पुस्तकें रहती हैं।

यहाँ राज्य का एक अस्पताल है जिसमें दो असिस्टेंट सर्जन, एक यूरोपियन लेडी-डाक्टर तथा अनेक कम्पाउंडर आदि कर्मचारी हैं। यहाँ गरीब रोगियों को दवा, भोजन, और रहने के स्थान दिये जाते हैं। आजकल नवीन महाराज की ओर से जनाना-अस्पताल बड़े खर्च के साथ बन रहा है। यहाँ एक बड़ा पोस्टआफिस, म्युनिसिपैलिटी-आफिस और रेलवे-स्टेशन (डुमराँव) तथा पुलिस-स्टेशन (थाना) है।

यह एक छोटा-सा सुन्दर नगर है जिसके चारों ओर सुहावने वन, पुष्पोद्यान, बगीचे और दर्शनीय बड़े-बड़े मैदान हैं। बगीचों में बड़ा बाग, राजेश्वरजी का बाग, काकीजी का बाग और बावन-बिगहा प्रशंसा के योग्य हैं। महाराज के किले से गोलाबाजार होती हुई स्टेशन तक एक सड़क गई है जो यहाँ का प्रधान राजमार्ग है। चौक पर तथा गोले में अनेक दूकानें हैं जिनमें वस्त्र, भूषण, अन्न, सब्जी, मिठाइयाँ आदि सभी आवश्यक पदार्थ मिलते हैं।

यहाँ चार अंग्रेजी दवाखाने हैं। आयुर्वेद-पंचानन पं० भीमसेन मिश्र राजवैद्य तथा पं० शिवप्रसादजी के आयुर्वेदीय औषधालय भी हैं।

यहाँ सोमवार तथा बृहस्पतिवार को खास तौर से बाजार लगता है जिसमें दिहातों के लोग अपनी-अपनी अनेक प्रकार की वस्तुएँ बेचने और खरीदने के लिये आते हैं।

यहाँ के राजा लोग 'परमार' क्षत्रिय हैं। बहुत दिनों तक उनके प्राचीन पुरुषों ने 'उज्जयिनी' नगरी में राजधानी बनाकर राज्यशासन किया; इसलिये ये लोग 'उज्जैन' कहलाते हैं। पर स्मरण रहे कि उज्जैन

कोई खास जाति नहीं है। प्राचीन इतिहासों में 'परमार' शब्द ही मिलता है जिसकी व्युत्पत्ति व्याकरणानुसार यह है—"परं = शत्रुं, मारयति = नाशयति इति परमारः।" अस्तु ये लोग बड़े ही प्रतिष्ठित क्षत्रिय हैं। इनलोगों ने इस प्रान्त में कई स्थानों में किले बनाकर राज्य-संचालन किया। अनुमान है कि ये लोग छः सौ वर्षों से इस प्रान्त में हैं; किन्तु इनका इतिहास सन् १५७७ ई० से पूर्ण प्रकाश में आता है। इनके प्राचीन पुरुष राजा दलपतिसिंह सन् १५७७ ई० में राजसिंहासन पर बैठे थे। इनलोगों का दिल्ली के बादशाहों से सम्बन्ध रहता था और वहीं से 'राजा' का पद और 'मनसब' आदि अधिकार मिलते थे। महाराज जयप्रकाश सिंह बहादुर १८०५ ई० में राजसिंहासन पर बैठे और ईस्ट-इंडिया-कम्पनी-द्वारा 'महाराज बहादुर' का पद पाया। तब से डुमराँव के राजा लोग 'महाराज बहादुर' होते आये हैं।

इस राज्य की उन्नति महाराज जयप्रकाश सिंह बहादुर के समय से ही होने लगी। इन्होंने किले के भीतर 'विहारीजी-का मंदिर' बनवाया जिससे इस नगर की शोभा चौगुनी हो गई। आजकल ऐसा मंदिर बनाने में चार लाख रुपये लगेंगे; किन्तु उस समय केवल बासठ हजार रुपये में ही यह मन्दिर तैयार हो गया। इन्हीं ने 'जयेश्वरनाथ' का शिवमन्दिर और 'नया पोखरा' बनवाया था।

महाराज जयप्रकाशसिंह के बाद उनके पुत्र महाराज सर महेश्वर बख्श सिंह बहादुर के. सी. एस्. आइ. सन् १८४३ ई० में राजसिंहासन पर बैठे। इन्होंने राज्य की बड़ी उन्नति की। रुपयों से खजाना भर

दिया। राजेश्वरजी का मंदिर, विशाल कोठी और पुष्पोद्यान, जानकीनाथ का मंदिर (काशी में असीघाट पर), अयोध्या में विशालभवन और पुष्पोद्यान तथा दतुवन-कुंड का जीर्णोद्धार, चित्रकूट में हनुमान्-धारा पर धर्मशाला, आरा में कतिराबाग-कोठी और डुमरावँ की बस्ती के बीच अनेक विशालभवन, स्टेशन-बँगला आदि निजकीर्त्ति-स्वरूप स्थापित किया। सच पूछिये तो डुमरावँ इन्हीं की कृपा से नगर कहलाने योग्य हुआ। ये बड़े ही धर्मात्मा राजा थे। इन्हीं के समय में डुमरावँ में रामनवमी तथा कृष्णाष्टमी के महोत्सव प्रारम्भ हुए जिनमें दस-दस हजार रुपये खर्च होते थे। इनको देखने के लिये रीवाँ-नरेश महाराज श्री ५ रघुराज सिंहजी छिपकर आये थे। ये उत्सव सात दिनों में समाप्त होते थे। इनमें भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के विद्वान्, पंडित, गवैये, भाट, पहलवान, बहुरूपिये, काशी-कलकत्ता-पटना-आरा आदि नगरों की नामी-नामी वेश्याएँ और कलावन्त गुणी आते थे और उचित पुरस्कार तथा बिदाई पाकर सात दिनों के बाद लौट जाते थे।

महाराज महेश्वरबख्श सिंह के बाद उनके पुत्र महाराज सर राधा प्रसाद सिंह बहादुर के. सी. आइ. ई. गद्दी पर बैठे। इन्होंने अपने कुल की प्राचीन मर्यादाओं का पालन भली भाँति किया। पाँच हजार बीघा पृथिवी दान करके ब्राह्मणों तथा अन्यान्य अनुचरों को दिया। प्रजा को सब प्रकार सुखी किया। निज गोत्रज क्षत्रियों का पूर्ण रूप से पालन तथा आदर-सत्कार किया। आगत विदेशियों की बड़ी आवभगत की। बहुत-से पंडितों तथा गुणियों को सदा के लिये आश्रय दिया।

ये गुणियों के बीच में बैठकर बड़े आनन्द से समय बिताते थे। ऐसा उत्तम खाने-पहननेवाला राजा इस वंश में दूसरा हुआ ही नहीं। इनाम देने में तो बड़े ही बहादुर थे। रामनवमी तथा कृष्णाष्टमी के उत्सवों में काशी की प्रसिद्ध वेश्याओं (तावखी, मैना, हुस्ना, सरस्वती आदि) को याचिका मानकर सैकड़ों रुपये दे देने में भी संकोच नहीं करते थे।

कभी-कभी महाराज सर्व-समक्ष में स्वयं भी कुछ कविता कह दिया करते थे। एक बार बनारस की वेश्या 'जावित्री' महफिल में नाचने के लिये खड़ी हुई। उसके प्रत्येक अंग से सौन्दर्य टपक रहा था। उसे देखते ही महाराज के मुँह से एक कविता (दोहा) निकल पड़ी थी—

'ऊँचे ह्वै सुर बस कियो, सम ह्वै नर मन लीन।.........'

एक बार इनके दरबार में 'हुलास कवि' आये और निम्न-लिखित पद्य पढ़ा—

दलकि-दलकि उठे दिल्ली दिल्ली-पति मीर
धरत न धीर कासमीर सरदारे लौं।
रूम हहरत रूस सारे भहरत चीन
चपि-चपि जात गात काँपत पतारे लौं।
कारनाट काबुल कलंगी कूर धूर होत
चूरचूर होत सुनि चरचा निसारे लौं।
सुनत सुजस तेरो भूप श्रीराधाप्रसाद
बलकि-बलकि उठे बलख बुखारे लौं॥

स्वर्गीय महाराज सर महेश्वरबख्शसिंहजी (डुमराँव)

[पृष्ठ ६]

सुनकर महाराज बड़े प्रसन्न हुए। एक जोड़ा दुशाला और ढाई सौ रुपये दिये। फिर पचास रुपये मासिक नियत कर सदा के लिये अपने दरबार में रख लिया।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी भी महाराज के दरबार में एक बार उपस्थित हुए थे। महाराज ने उनका मान और सत्कार पूर्ण रूप से किया और एक सौ रुपये मासिक नियत कर दिया। जबतक भारतेन्दुजी जीवित रहे तबतक उनका यह मासिक पुरस्कार नियम से काशी पहुँच जाया करता था। भारतेन्दु की एक पुस्तक 'दुर्लभबंधु' को महाराज ने निज व्यय से प्रकाशित करा दिया था।

मऊ-निवासी मदनमोहन पखावजी भी महाराज के दरबार में आये थे। उनका मृदंग बजाना सुनकर ये बहुत प्रसन्न हुए। एक बनारसी जरीवाली बेशकीमत चादर और पचास रुपये पारितोषिक दिये।

इन महाराज की सभा भोजराज की सभा के समान शोभायमान रहती थी। उसके बीच में बैठकर ये विद्वानों के साथ अनेक प्रकार के विनोद किया करते थे। इनकी सभा में व्याकरण, न्याय, वेदान्त, पुराण तथा धर्मशास्त्र के अद्वितीय विद्वान् तथा परम वावदूक श्रीयुत पांडेय चन्द्रमणि शर्माजी व्यास; षट्शास्त्रज्ञ वंशीधर आचारीजी, कर्म-कांड के अद्वितीय विद्वान् पंडित ईश्वरदत्त मिश्रजी, राजपुरोहित पंडित रामानन्द ज्यौतिषीजी, पंडित बलदेव मिश्रजी आदि विराजमान थे। व्रजभाषा के प्रसिद्ध विद्वान् गौड़-विप्र पंडित राधावल्लभ जोयसी 'विप्रवल्लभ' कवि अपनी कविताओं से महाराज को आनन्दित करते

रहते थे। एक दिन आपने निम्न-लिखित कविता रचकर महाराज को सुनाई—

"आबन के आब औ रुचिरताई के निलय,
सुखमा के आकर पयोद मन मौज के।
नेह के निधान औ विधान पतिदेवन के,
गुन के वजीर औ मुनीम चित्त चोज के॥
मीनन के राज सिरताज हरिनीनन के,
'बल्लभ' नयन ये प्रधान रति-फौज के।
लाज के जहाज महाराज सुभ कंजन के,
खंजन के नायब मुसाहिब मनोज के॥"

महाराज सुनकर आनन्दित हुए और प्रचुर पुरस्कार देकर कवि को सन्तुष्ट किया।

'रामचरित्र कवि' सदा महाराज के साथ रहा करते थे। इनके बनाये 'सावन-सिंगार' और 'रितुरसरास' नामक काव्य-ग्रन्थ महाराज के व्यय से प्रकाशित हुए थे; किन्तु अब अप्राप्य हैं। ये एक बार महाराज से विना आज्ञा लिये ही रियासत-सूर्यपुरा के अधीश राजा राज-राजेश्वरी प्रसाद सिंह के दरबार में चले गये। इसलिये इनको महाराज ने उदासीन होकर अपने दरबार से अलग कर दिया। तब ये राजा साहब (सूर्यपुरा) के दरबार में रहने लगे।

संगीताचार्य बच्चू मल्लिक ('प्रकाश'कवि) भी महाराज के कृपापात्र थे। वे कविता करते थे और गान-विद्या में तो तानसेन ही थे।

"सैयाँ बिदेसी पुरुब जनि जाहु रे"—इस पद को दो घंटे में समाप्त किया और जितनी बार मुँह से निकाला उतने ही भिन्न-भिन्न रागों में कहा। महाराज ने पुरस्कार में भूमि दी। फिर एक दिन उन्होंने महाराज को निम्नलिखित यमकात्मक पद्य सुनाया—

रजनी बरसे बर से जा कहो, बर सेजा रचों तबलों सजनी।
सज नीक पुसाक करों तन को तनको मत देर अबै करनी।
करनी धरि अंक करों पिय को पिय को अधरामृत होब धनी।
बधनी नहिं जोग सबै अबला अब लावहु पी पग लूँ रजनी।

सुनकर महाराज बाग-बाग हो गये। पुरस्कार देकर मलिकजी को निहाल कर दिया। संगीताचार्यजी अच्छे कवि थे। इनके बनाये 'रसप्रकाश', 'सुरप्रकाश' आदि ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने इनको 'संगीताचार्य' की पदवी दी थी।

यद्यपि महाराज स्वयं कवि नहीं थे तथापि दो गीत उनके बनाये मिलते हैं। एक यह है—

चलू सखिया रे मलिया की बगिया हो रामा,
फुलवा मैं चुनि-चुनि भरलौं चँगेलिया,
आई गइलो रे मलिया रखवरवा हो रामा।

महाराज के आश्रय में मेरे पूज्य पिता श्रीराजेश्वर मिश्रजी भी रहते थे, जो ठाकुरजी के श्रृङ्गार करने में अद्वितीय थे। आपने इसी गुण से महाराज को रिझाकर सकल सम्पत्ति प्राप्त की।

इस राज्य के दीवान थे आनरेबुल राय जयप्रकाश लाल बहादुर

सी. आइ. ई.। इस राज्य में आजतक ऐसा प्रतापी, दानी, गुणग्राहक तथा प्रबन्धकर्त्ता कोई दीवान नहीं हुआ! आपके साथ में प्रसिद्ध विद्वान् पं० शिवनारायण ओझाजी, पं० नकछेदी तिवारी ('अजान' कवि), सकल-कला-कुशल बाबू रामलखन मिस्त्रीजी सदा उपस्थित रहते थे। 'अजान' कवि के समान प्राचीन कविता किसी को याद नहीं थी।

रामलखन मिस्त्रीजी अब भी वर्त्तमान हैं। शिल्प-शास्त्र के मर्मज्ञ हैं। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बँगला तथा अंग्रेजी भाषा के अभिज्ञ हैं। सच्चरित्र, नम्र, स्पष्टवक्ता और मधुरभाषी हैं। इस नगर के सभी गण्य-मान्य व्यक्ति आपकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। मैं भी बड़े भाई की आज्ञा के समान इनकी आज्ञा का पालन करता हूँ।

एक बार ओरछा-राज्य के दामोदर कवि ने दीवान जयप्रकाश-लालजी की सभा में आकर निम्नलिखित कविता सुनाई—

"बाँसुरी की तान सुने रहत न कुल-कान
निपट नदान पग देहरी ते दैये ना।
'दामोदर' कहै वह रसबस करि लेत
रस-बतियान हू के मारग मझैये ना।
वे तो ब्रजठाकुर ठगोरी डारि ठगि लेत
चरित अनेक ताको भेद कहूँ पैये ना।
वह मनमोहन सुमोहि लेत मेरी बीर
इन्दीबरनैनी तू कलिन्दी-तीर जैये ना।"

दीवानजी ने सुनकर अच्छी विदाई दी और रामनवमी तथा कृष्णाष्टमी दोनों महोत्सवों में बिदाई दिलाने की प्रतिज्ञा की।

मैं जब डुमरावँ में श्रीचन्द्रमणिशर्मा व्यासजी से समस्त संस्कृत-व्याकरण पढ़ चुका, तब काशी में जाकर पढ़ने की इच्छा हुई; किन्तु द्रव्याभाव से रुक गया। एक दिन निम्न-लिखित कविता रचकर मैं दीवानजी के दरबार में उपस्थित हुआ—

"करैं स्वामि-कारज, सुपालैं प्रजा पुत्र सम,
घालैं करि सत्रुन हिये में हरसात है।
महाराज-लाड़िली को ब्याहो बान्धवेस-संग,
जाकी देखि सम्पति कुबेर तरसात है॥
भारत कै ईश्वरी दई है तुम्हें योग्य जानि,
यातें सी. आइ. ई. को खिताब सरसात है।
ग्रीषम के रवि सो प्रचंड औ' अखंड सदा
जैप्रकासलाल को प्रताप दरसात है॥"

बस, इसी साधारण कविता पर प्रसन्न होकर परमोदार दीवान साहब ने काशी में रहकर मेरे पढ़ने का सब खर्चा दिलाना प्रारम्भ कर दिया।

इन्हीं के उद्योग से महाराज राधाप्रसादसिंह की द्वितीय पुत्री का विवाह बघेलखंड के स्वामी रीवाँ-नरेश महाराज व्यंकटरमण रामानुज प्रसाद सिंह जी० सी० आइ० ई० के साथ हुआ था। पहले-पहल

डुमरावँ-राज्य का देशी नरेश से यही वैवाहिक सम्बन्ध हुआ। अब तो ऐसे कई सम्बन्ध हो गये।

महाराज पुत्र-हीन थे, इसलिये स्वर्गवासी होने के समय अपनी महारानी ही को राज्याधिकारिणी बना गये।

महारानी विक्टोरिया, इन्दौर की महारानी अहल्याबाई, मुर्शिदाबाद की महारानी स्वर्णमयी और डुमरावँ की भोजपुराधीश्वरी महारानी बेणीप्रसाद कुमारीजी—इन चारों रानियों ने निज योग्यतानुसार बहुत ही अच्छा राज्य-शासन किया है। डुमरावँ की रानी ने समस्त प्रजा की दयावती माता बनकर सब कार्य किये। आप बड़ी धर्मात्मा थीं। किले के भीतर श्रीविहारीजी का जो मन्दिर है उसके दरवाजे आदि को सोने-चाँदी से मढ़वा दिया, बहुत बड़ा सोने-चाँदी का सिंहासन बनवाया तथा श्रावण में ठाकुरजी के झूलने के लिये सोने-चाँदी का बहुत बड़ा पलना भी बनवा दिया। राम-जानकी, राधा-कृष्ण—इन चारों मूर्त्तियों के लिये कई हजार खर्च करके सब गहने सुवर्ण के बनवा दिये। अपने पति का स्मारक 'काव' नदी का विशाल पुल बनवाया जिससे प्रजा को बड़ा सुख हुआ। यहाँ की ग्रामदेवी 'डुमरेजिन' का बहुत बड़ा मन्दिर बनवा दिया। भारतवर्ष के सभी प्रधान-प्रधान तीर्थों की यात्रा की। वहाँ के ब्राह्मणों को हाथी, घोड़े, पालकी, गौ, भूमि, द्रव्य आदि देकर अयाची कर दिया।

आपके समय में स्त्रियों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। कोई पुरुष स्त्री का अनादर नहीं करने पाता था। यदि करता था तो आप उसे बड़ा कड़ा

दंड देती थीं। आपके द्वारा स्त्रियों का बहुत पालन-पोषण होता था। आपसे और वर्त्तमान महाराज के सुयोग्य पिता स्वर्गीय महाराज सर केशव प्रसाद सिंह बहादुर से कुछ अनबन रहती थी। इसलिये अप्रसन्न होकर आपने अपने स्वर्गवास के केवल एक दिन पहले जगदीशपुर के एक राजकुमार बाबू जंगबहादुर सिंह को दत्तक पुत्र बनाया और उनका नाम श्रीनिवास प्रसाद सिंह रखा।

आपके मरने के बाद राज्य 'कोर्ट आफ् वार्ड्स' के अधीन हो गया। उक्त महाराज केशव प्रसाद सिंहजी राज्य के लिये लड़ने लगे। सौभाग्यवश चार वर्षों के बाद वे विजयी होकर बड़े ही समारोह के साथ राजसिंहासन पर बैठे।

"सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना।
तेन सिंहासनं पित्र्यमखिलं चारिमण्डलम्॥"

अर्थात् उस गजगामी राजा ने एक ही समय दोनों को निज पैरों से दबाया—पिता के सिंहासन को और शत्रुओं के समूह को।

इतना तो सभी स्वीकार करते हैं कि इस उज्जैन-वंश में प्रथम बाबू कुअँर सिंह और द्वितीय महाराज केशव प्रसाद सिंह के समान तेजस्वी, नक्षत्री तथा प्रभावशाली पुरुष कोई नहीं हुआ। सचमुच जब ये क्रोधभरी दृष्टि उठाकर देखते थे तब बड़ों-बड़ों के हृदय थर्रा जाते थे। इन्होंने बड़े प्रताप से राज्य-शासन करना प्रारम्भ किया। दुष्ट असामियों को ऐसा कड़ा दंड दिया कि वे सदा के लिये सीधे हो गये। मालगुजारी तहसीलने में तो ये ऐसे बहादुर थे कि विजया-

दशमी तक एक पैसा भी बाकी नहीं रहता था। इन्होंने अपने सुप्रबंध ही के बल से लगभग दो करोड़ रुपये इकट्ठे किये। किले के भीतर 'मार्बुल-हाउस' बनवाया जिसमें एक लाख रुपये खर्च हुए। इसी में बैठकर ये प्रतिदिन कचहरी करते थे। मैनेजर की कोठी भी इन्होंने बहुत खर्च करके फिर बनवाई जिसके चारों ओर पुष्पवाटिका रहने से द्विगुणित शोभा हो गई। सबसे नवीन कार्य इनका है राज-भवन, विहारीजी के मन्दिर तथा अनेक कोठियों में बिजली की रोशनी लगवाना।

इनके शरीर में आलस्य का नाम भी नहीं था। प्रातःकाल ही उठकर शौचादि से निवृत्त होकर घोड़े पर चढ़ समस्त नगर का निरी-क्षण कर आते थे। नगर के बाहर तथा समस्त राज्य में कोई ऐसी भूमि नहीं थी जिसको इन्होंने न देखा हो। ये विहारीजी के परम भक्त थे। जब डुमरावँ में रहते थे, सायंकाल सब काम छोड़कर अवश्य ही बिहारीजी का दर्शन करते थे और उन्हीं के दरवाजे पर बैठ रुद्राक्ष की माला लेकर गुरुमंत्र अष्टोत्तर-शत जप करते थे। इससे सब पुजारी लोग भी सावधान रहते थे। ठाकुरजी की पूजा-सेवा भी अच्छी होती थी। इनकी छड़ी की मूठ में भी विहारीजी की प्रतिमूर्त्ति खुदी हुई थी जिसे सदा अपने हाथ में रखते थे और प्रातःकाल उठते ही उसी का दर्शन करते थे। ये जब अकेले टहलने लगते थे तब बड़े मधुर स्वर से "राम कहे जा, काम किये जा, ना काहू का डर है" यही पद बार-बार कहा करते थे। सचमुच ये बड़े ही निर्भय मनुष्य

स्वर्गीय महाराज सर राधाप्रसादसिंहजी

[पृष्ठ ७]
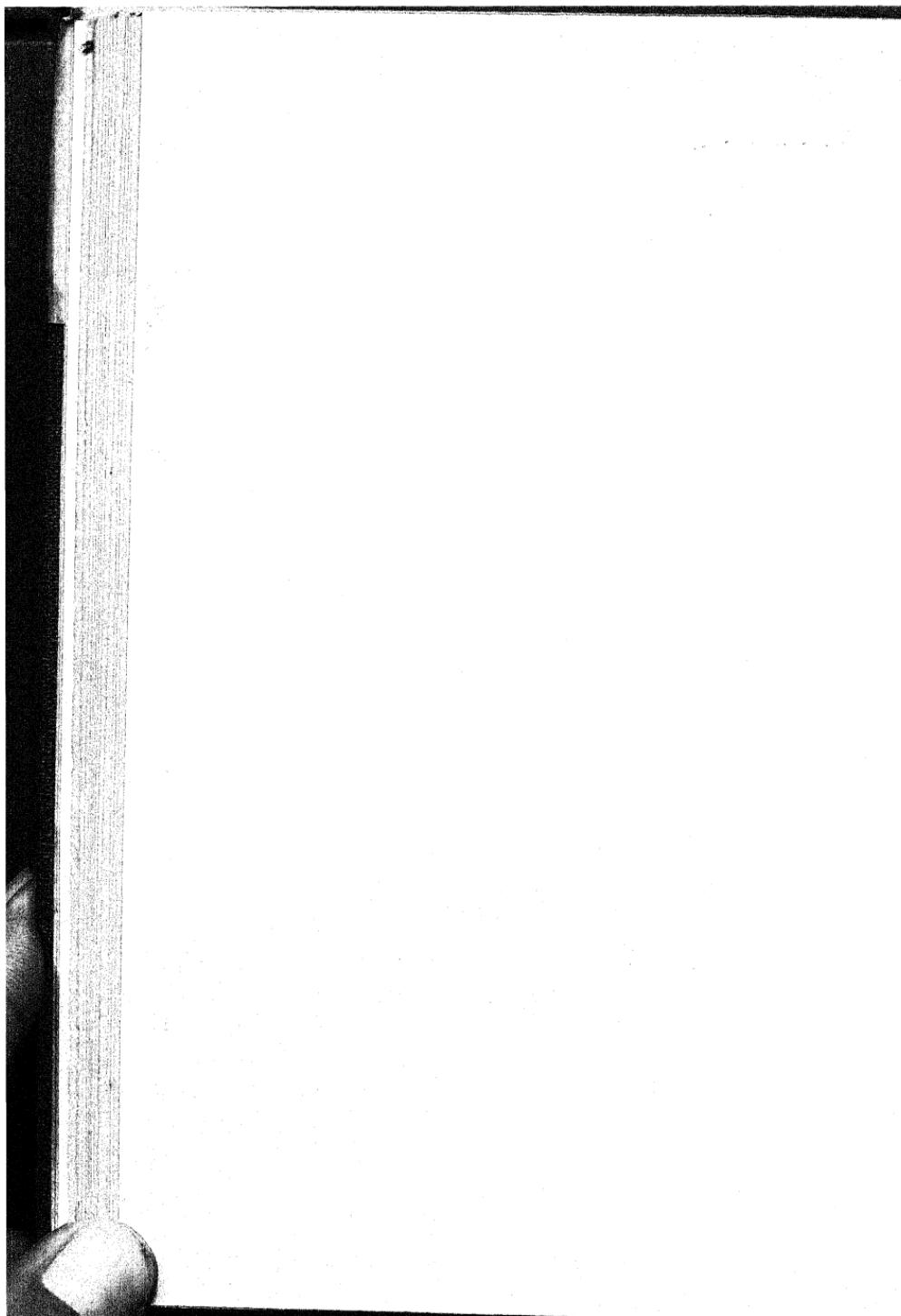
थे। आत्मबल इनमें परिपूर्ण रूप से विद्यमान था। ये बड़े रूपवान् भी थे।

इनके हृदय में यह दृढ़ विश्वास था कि विहारीजी की ही कृपा से मुझे यह राज्य मिला है। कुछ दिनों तक तो ऐसा नियम था कि इनकी पगड़ी विहारीजी के सिंहासन के नीचे रूमाल में लपेटकर रखी रहती थी। जब कभी ये बाहर जाते थे, उसी को पहन लेते थे। ये विद्वान् तथा गुणियों के सत्कार, दुष्टों के तिरस्कार तथा दुःखों के प्रतिकार में भी बड़े ही निपुण थे। अपराधियों के अपराध भी अनुनय-विनय करने पर बड़ी उदारता के साथ क्षमा करते थे।

मैं इनका बाल-सहचर था। मुझपर इनकी बड़ी कृपा रहती थी। पर जब से मैं स्वर्गीया महारानी के दत्तक पुत्र को पढ़ाने के लिये राँची चला गया, तब से कुछ उदासीन रहते थे। किन्तु जब दत्तक राजकुमार दस लाख रुपये देकर राजसिंहासन से अलग किये गये और ये महाराज उस सिंहासन पर सुशोभित हुए तब मैं राजकुमार को छोड़कर पहले पटना के नार्मल (ट्रेनिंग) स्कूल में, फिर दो वर्ष बाद पटना-कालेज में चला गया। तब ये महाराज फिर मुझपर प्रसन्न हो गये।

मैं कई बार इनके दरबार में हाजिर हुआ। इन्होंने मुझसे प्रेमपूर्वक सम्भाषण किया। एक बार इनके राज्याधिरोहण के तीन-चार वर्ष बाद मैं दुर्गापूजा की छुट्टी में घर (डुमरावँ) आया। मैंने इनसे प्रार्थना की कि मैं विजयादशमी के रोज श्रीमान् को पद्यबद्ध आशीर्वाद देना चाहता हूँ। इन्होंने कहा, जब मैं उस दिन सायंकाल

में गद्दी पर बैठने के लिये जाऊँगा तब आप ही का आशीर्वाद लेकर (पद्य सुनकर) जाऊँगा । आज्ञानुसार मैं उस दिन ठीक समय पर उपस्थित हुआ ।

चारों ओर समस्त राजकर्मचारी तथा समस्त अधीनस्थ जागीरदार सजधजकर खड़े थे । ये उनके बीच महामूल्यवान् वस्त्रों तथा चार लक्ष के भूषणों से सुसज्जित हो, सिर पर रत्नजटित मुकुट धारण कर, हाथ में मूल्यवान् तलवार लेकर, खड़े हो गये । मैंने निम्न-लिखित निज कविताओं को बड़े उत्साह से सुनाना प्रारम्भ कर दिया—

कवित्त

पावस की बीजुरी-सी दमकै तिहारी तेग,
मुकुट तिहारो पूर्णचन्द्र हू ते दूना है ।
तारावली तेरे गुणगण सो विराजित हैं,
सुयश तिहारो पुष्पगंध सो तिगूना है ।
कालानल हू ते तुव क्रोध शत्रुदाहक है,
परम कृपा हू कल्पवृक्ष सम पूना है ।
भोजपुर-महाराज केशवप्रसादसिंह,
ग्रीषम को भानु तो प्रताप को नमूना है ॥१॥
तेरी वीरता की बात सुनते ही शत्रुन के,
गातन में तुरतहि ताप चढ़ जावैगी ।
ह्वैहै मुख फीको नीको पाइहै कहूँ न चैन,
धकधकी छाती में विशाल बढ़ जावैगी ।

बात न कढ़ैगी एको हक-बक बन्द ह्वैहै,
लूक-सी करेजे बीच हूक मढ़ जावैगी।
भोजपुर - महाराज केशवप्रसादसिंह,
म्यान तें कहूँ जो तेरी तेग कढ़ जावैगी ॥२॥

प्रबल प्रतापी निज शत्रुन के नासिबे को,
म्यान तें सदाही तीखी तेग कढ़ते गई।
गाय-द्विज-दीनन के पालन करन हेत,
दान करिबे की चाह नित्य बढ़ते गई ॥
युद्ध माँहि विजयश्री आपही को देवे हित,
विजयसुमालिका सदा गढ़ते गई।
भोजपुर-महाराज केशवप्रसादसिंह,
आपके प्रताप की जवानी चढ़ते गई ॥३॥

प्रबल प्रताप तेरो सारे भूमि-मंडल पै,
फैलत चहूँघा रहै सौ हजार सद्दी पै।
सकल प्रजा की भक्ति तुममें बिराजै सदा,
न्हाते रहो नित्य परिवार-नेह-नद्दी पै ॥
सरद समै की कौमुदी-सी तुव कीरति हू,
सकल बिहार बीच बिखरै बिहद्दी पै।
भोजपुर - महाराज केशवप्रसादसिंह,
जुग-जुग जीते रहो भोजराज-गद्दी पै ॥४॥

मैं हूँ राजहंस तुम मानसर पूरो भरो,
मैं हूँ एक भौंर तुम कमल अमंद हो।
मैं हूँ तो मयूर तुम पावस को स्यामघन,
मैं हूँ तो चकोर तुम पूरन सुचंद हो।
मैं हूँ कल कोकिल औ तुम रितुराज मेरो,
मैं हूँ 'विप्रचन्द' तुम छत्रकुलचंद हो।
भोजपुर-महाराज केशवप्रसादसिंह,
मैं हूँ तो सुदामा तुम मेरे कृष्णचंद हो ॥५॥

सुनकर महाराज ने अत्यन्त आह्लादित होकर निज मणिमय मुकुट-मंडित मस्तक मुझ दीन के चरणों पर झुका दिया और सादर पुरस्कार दिया। रामनवमी तथा कृष्णाष्टमी के महोत्सवों में बिदाई भी देने के लिये आज्ञा प्रचारित की।

इसके बाद ये महाराज बिहार के गवर्नर की सभा (एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल) के मेम्बर बनाये गये। फिर बिहार-प्रान्तीय शासन-विभाग के प्रधान मन्त्री बनाये गये। प्रजा में बड़ा उत्साह छा गया। अनेक अभिनन्दन-पत्र दिये गये। स्थानीय शाकद्वीपीय ब्राह्मण-समाज ने मुझको अभिनन्दन बनाने तथा सुनाने का भार दिया। (इस समाज के सभापति हैं इस राज्य के प्रधान राजवैद्य आयुर्वेद-पंचानन पंडित भीमसेन मिश्रजी तथा मन्त्री हैं इस राज्य के राज-पुरोहित आचार्य श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्रजी)। बहुत बड़ी सभा सजाई गई। महाराज बीच में राजसिंहासन पर विराजित हुए। मैंने

बड़े गम्भीर तथा मधुर स्वर से अभिनन्दन-पाठ किया और उसकी पूर्णता के लिये निम्न-लिखित कविता भी पढ़ी—

बालेपन से ही निज बुद्धि की विचित्रता को,
जग में चहूँघा भौन-भौन पसरायो है।
पूरो कै खजानो निज राज्य को सुदृढ़ कीनो,
गढ़ में विशाल दिव्य भौन बनवायो है॥
प्रबल प्रताप ही तें लीनो डुमराँव-राज्य,
शत्रुन के मुखमध्य काजल लगायो है।
भोजपुर-महाराज केशवप्रसादसिंह,
लाट की सभा में अति उच्च पद पायो है॥

उपस्थित समाज तथा महाराज ने मेरे अभिनन्दन-पाठ को बहुत पसन्द किया। महाराज ने यथाक्रम सबका उत्तर भी दिया। अन्त में सबकी ओर से महाराज पर पुष्पवर्षा की गई।

महाराज को अन्तिम महारानी से, जो इस समय वर्त्तमान हैं और राजमाता कही जाती हैं तथा बड़ी धर्मात्मा हैं, दो पुत्र तथा चार कन्याएँ हुईं। प्रथम पुत्र का नाम महाराजकुमार रामरणविजय प्रसाद सिंह और द्वितीय पुत्र का नाम महाराजकुमार विश्वनाथप्रसाद सिंहजी है। प्रथम पुत्र के जन्म-समय महाराज 'महाराज' नहीं थे, 'बाबूसाहब' कहलाते थे; किन्तु द्वितीय पुत्र के जन्म-समय डुमराँव-राज्य के महाराज थे। इसलिये इस समय बड़ा उत्सव मनाया गया। डुमराँव (ठठेरी-बाजार) के निवासी चौधरी गंगाप्रसाद जायसवाल 'गंगा कवि' ने बधाई की अनेक

कविताएँ बनाकर महाराज को सुनाईं। महाराज ने प्रसन्न होकर प्रचुर पुरस्कार दिया।

ये महाराज बड़े ही कर्मशील राजा थे। राज्य के सभी विभागों का निरीक्षण भली भाँति करते थे। इसलिये सभी कर्मचारी सावधान रहा करते थे। कोई कर्मचारी घूस नहीं खा सकता था और चोरी भी नहीं कर सकता था। ये अपराधियों को उचित दंड भी देते थे। इनका जीवन युद्धमय था—प्रथम युद्ध राज्य के लिये कोर्ट आफ् वार्डस् के साथ, द्वितीय युद्ध महाराज राधाप्रसाद सिंहजी की द्वितीय पुत्री (रीवाँ-नरेश श्री व्यंकटरमण रामानुज प्रसाद सिंहजी की धर्मपत्नी) के साथ, तृतीय युद्ध महाराज गुलाब सिंहजी (वर्त्तमान रीवाँ-नरेश) के साथ, चतुर्थ युद्ध डुमरावँ-राज्य के भूतपूर्व दीवान राय जयप्रकाश लाल बहादुर के पुत्र रायबहादुर हरिहर प्रसाद सिंह (बाबू हरीजी) के साथ, पंचम युद्ध अपने प्राइवेट सेक्रेटरी चौधुरी कालिका राय के साथ।

राज-काज के लिये विशेष परिश्रम करने के कारण इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। कलकत्ता के नामी डाक्टर सर नीलरत्न सरकार और श्री विधानचन्द्र राय चिकित्सा करने लगे। थोड़े दिनों के बाद उन्हीं लोगों की राय से ये कलकत्ता गये। वहीं इनका शरीरान्त हुआ। मृतक शरीर काशी पहुँचाया गया और मणिकर्णिका पर दाह-क्रिया हुई। डुमरावँ में एक लाख रुपये खर्च करके श्राद्ध किया गया। अनन्तर इनके उक्त प्रथम पुत्र राज्याधिकारी हुए।

मेरे जीवन-काल में तीन राजाओं का शासन-काल पूरा हुआ—

डुमराँव-राज्य के भूतपूर्व दीवान

स्वर्गीय रायबहादुर जयप्रकाशलालजी

[बीच में कुर्सी पर बैठे]

[दोनों ओर—दो खास खवास (खानसामा)]

[पृष्ठ ११]
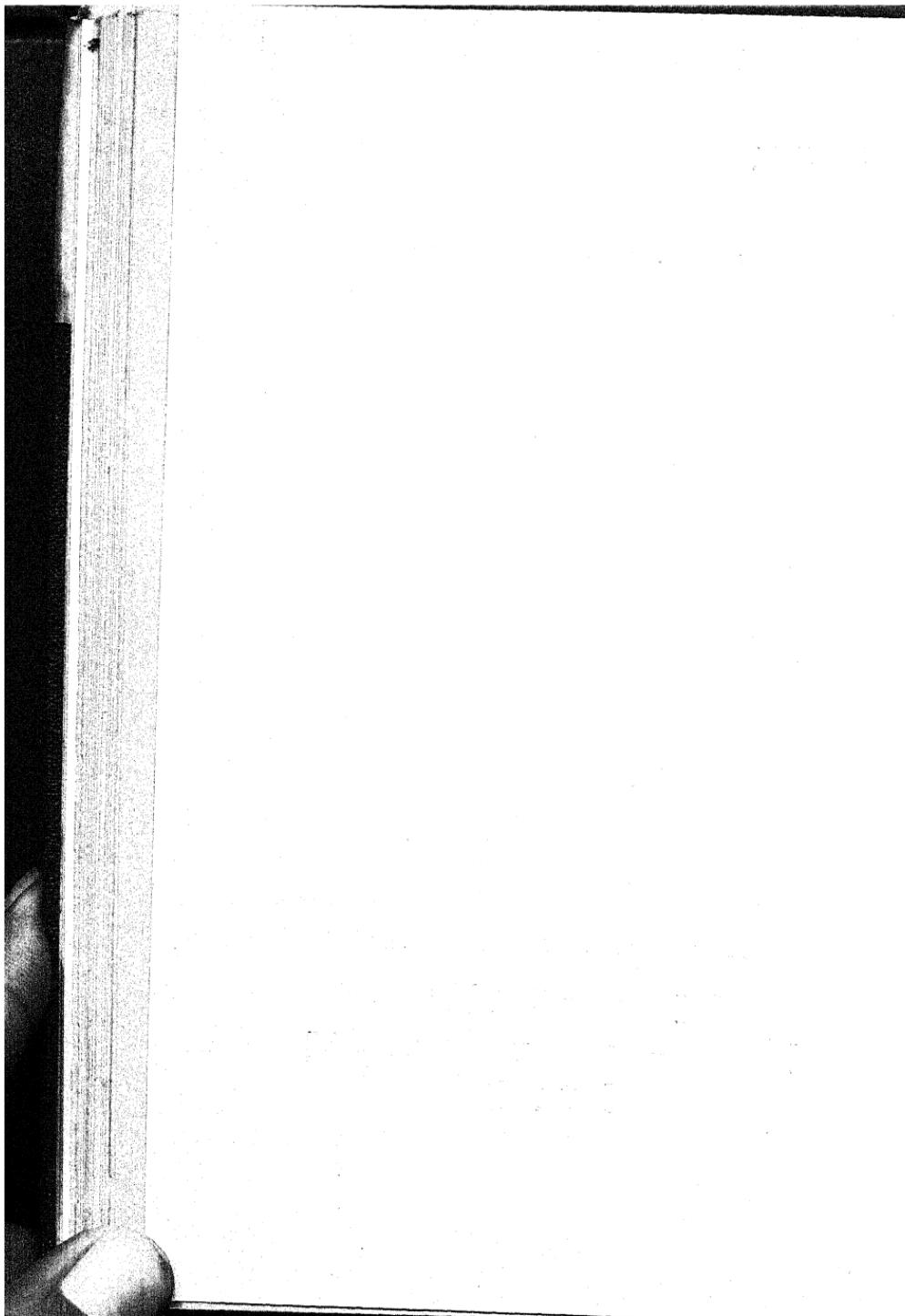
महाराज राधा प्रसाद सिंह, महारानी वेणी प्रसाद कुमारी तथा महाराज केशव प्रसाद सिंह।

महाराज महेश्वरबख्श सिंह ता० ९ अक्तूबर को १८४३ ई० में सिंहासन पर बैठे और १८८१ ई० में परलोकवासी हुए। इसी साल उनके पुत्र युवराज राधा प्रसाद सिंह राजा हुए और ये १८९४ ई० में परलोकवासी हुए। इनके बाद श्रीमती महारानी वेणी प्रसाद कुमारीजी राज्याधिकारिणी हुईं और १९०८ ई० में स्वर्गवासिनी हुईं। इनके चार वर्ष बाद महाराज केशव प्रसाद सिंहजी १८ सितम्बर को १९१२ ई० में राजसिंहासन पर विराजित हुए और १९३३ ई० में २३ सितम्बर को कैलासवासी हुए।

आजकल यहाँ महाराज रामरणविजय प्रसाद सिंहजी भोजपुर की गद्दी पर विराजमान हैं। सन् १९३४ के भीषण भूकम्प के समय पचास हजार रुपये भूकम्प-पीड़ित जनों की सहायता के लिये आपने दान दिये। आजकल आप जनाना-अस्पताल बनवा रहे हैं जिसमें स्त्रियों के रहने, चिकित्सा कराने तथा भोजन आदि का पूरा प्रबन्ध रहेगा। प्रजा आपसे बहुत आशा रखती है। आप बड़े न्यायी और दयालु हैं। अपनी प्रजा की रक्षा भली भाँति करते हैं। राज्य की व्यवस्था में बड़े दक्ष हैं। आपकी शिक्षा-दीक्षा अजमेर के राजकुमार-विद्यालय में हुई है। आपका विवाह गुजरात-प्रान्त की 'बारिया' नामक देशी रियासत में हुआ है। आप बड़े रूपवान् और शिकार के शौकीन हैं।

जब मैं पाँच-छ बरस का था तब महाराज सर महेश्वरबख्श सिंह बहादुर के राज्यशासन का अन्तिम समय था। उनके भव्य रूप का आभास-मात्र मुझे स्मरण है। इसके बाद महाराज सर राधा प्रसाद सिंह, महारानी वेणीप्रसाद कुँअरि तथा महाराज सर केशव प्रसाद सिंहजी के राजत्वकाल का सुख-दुःख अनुभव करने का संयोग भली भाँति मुझे प्राप्त हो चुका है।

इस राज्य से मेरा वंश-परम्परागत सम्बन्ध है। मेरे पूज्यपाद पिताजी के स्वर्गारोहण के बाद, मेरे लघु भ्राता शारदाप्रसाद मिश्र, मेरी पूजनीया माताजी की राय से, पिताजी के स्थान में रखे गये। मैं पढ़ने के बाद अनेक बाहरी स्थानों में रहकर जीविकोपार्जन करता रहा। यहाँ के किसी राजा के दरबार में मेरे आने-जाने की रोक-टोक कभी नहीं हुई। जब इच्छा हुई, दरबार में अव्याहत गति से गया और राजदर्शन तथा वार्त्तालाप करने का सुअवसर प्राप्त किया। यद्यपि मैं यहाँ के किसी राजा के आश्रय में स्थान न पा सका, तो भी मैं भोजपुराधीश को अपना स्वामी समझता हूँ—इनकी कल्याण-कामना करता हूँ।

मैंने कई बार महाराज केशव प्रसाद सिंहजी से सर्व-समक्ष में कह दिया है कि "देस में रहेंगे, परदेस में रहेंगे, काहू भेस में रहेंगे, तऊ रावरे कहाय हैं।" सुनकर महाराज मन्द मुसकान के साथ गम्भीर भाव धारण कर लेते थे।

मैंने एक बार महाराज से हँसते हुए कहा—

भूतपूर्व भोजपुराधीश

स्वर्गीय महाराज सर केशवप्रसादसिंहजी

[पृष्ठ १५]

"श्री केशब परसादजू, बरसत सुबरन-बृन्द ।
मम अभाग-छाता लग्यो, आवत एक न बुन्द ॥'

सुनकर महाराज हँसते हुए चुप हो गये ।

कभी-कभी मेरी इच्छा भी इस राज्य में आश्रय पाने की होती थी । एक बार महारानी की इच्छा मुझे आश्रय देने की हुई; किन्तु एक पंडित महोदय की कृपा से यह बात न होने पाई । उनका उस समय बहुत अधिकार था । वे जब-जब मेरी प्रशंसा सुनते थे तब-तब 'सीतारल्लकभल्लभग्नहृदयः स्वस्थो न लंकेश्वरः' हो जाते थे ।

इस राज्य का पूर्ण रूप से वर्णन करने का यह स्थान नहीं है । केवल आत्मकथा के प्रसंग से इतना लिख दिया है । मेरी इच्छा थी कि मैं इस राज्य का विस्तृत इतिहास लिखूँ । किन्तु राज्य से उत्साह न मिलने के कारण इस विचार को सर्वदा के लिये स्थगित कर दिया ।

"पानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैः
दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुध्या ।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा
भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने चरन्ति ॥"

यहाँ के नगरनिवासियों में कुछ व्यक्ति उल्लेखनीय हैं—वैश्यों में बद्रीनारायण साहु, गंगा प्रसाद साहु, चमरू साहु, नन्दकिशोर साहु गणना के योग्य हैं । अंग्रेजी-शिक्षाप्राप्त लोगों में बाबू राजेश्वर प्रसाद (रिटायर्ड सिविल सर्जन), बाबू नगेन्द्र प्रसाद (असिस्टैंट सर्जन,) श्री मनोरंजन प्रसाद (प्रोफेसर, हिन्दू यूनिवर्सिटी), डिपुटी रामरक्षा

प्रसाद एम० ए० बी० एल०, कन्हैया प्रसाद एम० ए० बी० एल्० (एडवोकेट, पटना-हाईकोर्ट), काशी प्रसाद बी० एस्-सी०, चौधुरी रासविहारी राय एम्० ए० कविरत्न, चौ० व्रजविहारी राय बी० ए०, बी० एल्०, चौ० हरकेश राय बी० ए० बी० एल्०, चौ० विन्ध्येश्वरी राय बी० ए०, बाबू राम एकबालजी बी० ए०, त्रिभुवननाथ त्रिवेदी (सब-इन्सपेक्टर आफ् पुलिस), शिवपूजन मिश्र, रामपूजन तिवारी, रामनेवाज तिवारी, चौ० रामसकल राय आदि। संस्कृत-विद्वानों में पं० कालिका प्रसादजी, पं० अम्बिका प्रसादजी, पं० पूर्णचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य, पं० रामाज्ञा मिश्रजी (प्रधानाध्यापक, प्रयाग-संस्कृत-विद्यालय), लालजी मिश्र काव्यतीर्थ, उमादत्त मिश्र काव्यतीर्थ, शिवप्रसाद मिश्र काव्यतीर्थ, पं० ठाकुर तिवारी कर्मकांडाचार्य, पं० विश्वनाथ मिश्रजी दैवज्ञ, पं० रामावतार मिश्र सिद्धजी। चिकित्सकों में आयुर्वेदपंचानन पं० भीमसेन मिश्र जी राजवैद्य, अवधेश मिश्र आयुर्वेदशास्त्री, पं० अम्बिका मिश्र, डाक्टर सीताराम, बंधनराम हकीम आदि। जमींदारों में चौ० कालिका राय, चौ० हरगुन राय, चौ० बलदेव राय गणना के योग्य हैं।

रे मानस भवभय-चकित, सकलं कर्म विहाय।
कृष्ण-कीर्त्तनं कुरु सदा सत्य-शान्ति-लाभाय॥

'विप्रराजेन्द्र' योगिराज दुर्गादत्त परमहंस

[पृष्ठ २७]

द्वितीय अध्याय

नन्दतनय तव सन्निधौ, प्रार्थयामि हृदयेन।
श्रवणे कुरु मम निर्मले, वेणोर्मृदुनिनदेन ॥

वंश-परिचय

डुमरावँ में ब्राह्मणों की संख्या विशेष है। यहाँ दो प्रकार के ब्राह्मण निवास करते हैं—सरयूपारीण और शाकद्वीपीय। सरयूपारीण लोग ग्राम-पुरोहित हैं। इनमें दो भेद हैं—एक पूरब टोलवाले, दूसरे पच्छिम टोलवाले।

यहाँ जिला 'बलिया' (युक्तप्रान्त) के शिवपुर-ग्राम-निवासी एक सरयूपारीण ब्राह्मण, भोजपुरेश के विशेष अनुनय-विनय से वशीभूत होकर, परहंसाश्रम नामक स्थान बनाकर निवास करते थे। इनका पवित्र नाम था पंडित दुर्गादत्त पांडेय—द्वितीय नाम 'विप्रराजेन्द्र' था। किन्तु ये योगी थे, इसलिये इन्हें सभी लोग 'परमहंसजी'* कहते थे। ये तब इसी नाम से प्रसिद्ध थे। अब भी इसी नाम से सब लोग इनका

---

* 'दुर्गादत्त परमहंस' नामक जीवनचरित्र, इसी पुस्तक के लेखक का लिखा हुआ, पुस्तक-भंडार (लहेरियासराय) से प्रकाशित है। मूल्य १॥)

स्मरण करते हैं। ये षट्शास्त्रों, चारों वेदों, अष्टादश पुराणों, अष्टादश स्मृतियों तथा योगशास्त्रों के ज्ञाता थे। दिन-रात पूजापाठ में निमग्न रहते थे। अनन्यवीर शैव थे। ये जिस कुंड में हवन करते थे उसकी अग्नि अहोरात्र प्रज्वलित रहती थी। शिवजी की सुन्दर प्रतिमा चाँदी के अर्घा पर सदा इनके सामने विराजित रहती थी। ये सदा रेशमी वस्त्र धारण करते थे, सिर पर जटा और मुख पर लम्बी दाढ़ी लटका करती थी। सर्वाङ्ग में स्वच्छ विभूति की दिव्य शोभा फैला करती थी। यज्ञोपवीत उज्ज्वल गंगा-प्रवाह का अनुकरण करता था। ये आजकल के ऋषि थे। गृहस्थ होकर भी जीवन्मुक्त थे। सैकड़ों विद्यार्थी इनके आश्रम में रहकर, अन्न-वस्त्र से पालित होकर, विद्याध्ययन करते थे। जब ये महाराज की सभा में जाते थे तब पालकी पर चढ़कर पैर में खड़ाऊँ पहनकर। सिर पर एक बहुत बड़ा मोमजामा का छत्र लगा रहता था। सभा में जाते ही महाराज राधा प्रसाद सिंह इनको आसन देते थे और इनके पदपद्मों पर अपना मुकुट-मंडित मस्तक रखकर कृतार्थ होते थे। महाराज भी कभी-कभी इनके परमहंसाश्रम में जाते थे और कुशासन पर बैठकर उपदेश ग्रहण करते थे। इनकी कलिकल्मषनाशिनी पवित्र मूर्त्ति आज भी मेरे नेत्रों में छाई रहती है। इनके लिखे बीसों ग्रन्थ हैं, जिनमें सर्वोत्तम 'भगवद्गीता का शिवभक्ति-पक्षीय भाष्य' समझा जाता है। इनका विस्तृत जीवन-चरित मैंने अलग लिखा है, जो लहेरियासराय के पुस्तक-भंडार से १।) में मिलता है।

मेरे पूज्यपाद प्रपितामह श्री पंडित गंगाफल मिश्रजी शाकद्वीपीय

विप्र थे। ये विद्वान् थे। इनका अक्षर बड़ा ही सुन्दर होता था। इसी गुण से मोहित होकर महाराज जयप्रकाश सिंह ने इन्हें अपने आश्रय में रखा। इनके दो पुत्र थे—बड़े पं० संगम मिश्रजी तथा छोटे पं० जानकी मिश्रजी। जानकी मिश्रजी के दो पुत्र थे—प्रथम ठग मिश्रजी तथा द्वितीय लँगट्ट मिश्रजी। लँगट्ट मिश्रजी विवाहित होने के बाद युवावस्था ही में स्वर्गवासी हो गये।

ठग मिश्रजी ने यज्ञोपवीत-संस्कार होने के बाद, भोजपुरेश के पुरोहित श्री पंडित ईश्वरदत्त मिश्रजी से, प्रक्रिया व्याकरण (सारस्वत-चन्द्रिका आदि) तथा काव्य का अध्ययन किया। इसके अनन्तर दिलीपपुर (जगदीशपुर, शाहाबाद) के निवासी सरयूपारीण-सूर्य, साहित्याचार्य, व्याकरणोपाध्याय, सांख्ययोगोपाध्याय, महामहोपाध्याय पं० रघुनन्दन त्रिपाठी विद्यासागर * से 'चन्द्रालोकालंकार' पढ़ा। फिर गौड़-विप्र-वंशावतंस पं० राधाबल्लभ जोयसीजी ('विप्रबल्लभ' कवि) से पिंगल तथा व्रजभाषा के अनेक ग्रन्थों को पढ़ा। इसके बाद संगीताचार्य बचू मलिकजी से कुछ संगीत-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया और सितार तथा मृदंग बजाने का अभ्यास किया। ये कर्मकांडी ब्राह्मण थे। सारा दिन पूजापाठ ही में व्यतीत करते थे। प्रत्येक अमावास्या को श्राद्धपिंडदान करते थे। प्रतिदिन त्रिकाल-संध्या और तर्पण करते थे। ये परम शाक्त थे। इसलिये चैत्र तथा आश्विन के नवरात्रों में विन्ध्याचल

---

* 'बिहार के विद्यासागर' नामक चार आने की सचित्र पुस्तक में इनकी पूरी जीवनी छपी है, जो पुस्तक-भंडार (लहेरियासराय) से प्रकाशित है।

में जाकर नवरात्र-निवास करते थे। मकर-संक्रान्ति में प्रयाग जाने का भी नियम ही था। ये हिन्दी में व्रजभाषा की अच्छी कविता करते थे। उदाहरण के लिये कुछ कविताएँ यहाँ उद्धृत करता हूँ—

मनहरन छन्द (कवित्त)

अबुध अधीर छिन थीर ना रहत नेक
बावरो सो चंचल सुबास-रस पागै ना।
सुमन सरोज जूही मालती को दूर करि
सेमर सो आसा भूरि पूरि कहुँ लागै ना॥
कौने-कौने ठौर 'ठग' कादर कपूत फँस्यो
करु इगकोर जाते विषय-रोग रागै ना।
चरन-सरोज विन्ध्यावासिनी तिहारे छोड़ि
मधुप हमारो मन और कहूँ भागै ना॥१॥

जेते जगतीतल में प्रगट चराचर हैं,
तिन्हें निज जानि नेह अँखियाँ दरस तू।
कहे 'ठग' स्वेत जस छायो लोक-लोकन मैं,
जीवन के मूल यातें सबमें सरस तू।
जाचक निहाल करी पौरे-पौरे जाय-जाय,
नेह-भरे नैनन सो प्रीतिहू परस तू।
करों करजोरे जगदम्ब या अरज तोते,
निज-पद-भक्तन पै भक्ति ही बरस तू॥२॥

[पावस-वर्णन]

सावन में कारी घटा गरज रहे री बीर

छावन है बिज्जुछटा छिनछिन छाकि लाज।

भावन है बारिबुन्द पवन झकोर 'ठग'

धावन री वाही ठौर सदन बिसारि काज।

या बन करत मोर झिल्लिन को जोर सोर

हावन हरित अंग भूषन बसन साज।

बाँसुरी बजावे स्याम, स्यामा मेघराग गावैं

हरित हिंडोरे दोऊ कुंजन में झूलैं आज ॥३॥

हरित सु चोटीबंद, बंदनी हरित सोहै

हरित सुमाँग-टीका बेसर हरित साज।

हरित सुकंठहार हिय मैं हरित पैन्हि

हरित सुबाजूबंद पछुआ हरित राज।

हरित सुचूरी साथ कंकन हरित 'ठग'

हरित अँगूठी छुद्रघंटिका हरित काज।

हरित सुपायजेब हरित बसनवारी,

हरित हिंडोरे स्यामा स्याम संग झूलैं आज ॥४॥

[होली]

फेटन गुलाल-भरे अब्रख अबीरहू त्यों,

हेम पिचकारी भरी धरैं कर साज-साज।

आये ब्रजखोरिन मची है द्वार-द्वारे धूम,
घूमि-घूमि चूमै मुख दाव पाय भाज-भाज ।
देखि ब्रजबाला सबै धाईं यों उमंग भरी
मलिकै गुलाल गाल गारी दईं त्यागि लाज ।
जुगल उरोजें डारें अबिर गुलालैं दईं,
नईं नईं होरी खेलें गोरी ब्रजराज आज ।५॥

[सवैया]

ननदी औ जेठानी करें घर वेर, कमोरिन मैं रँग घोरियो ना ।
इत आइहों सास को चोरी अबै, हम पाय परैं झकझोरियो ना ।
रसरंग सुढंग करो हित सो, 'ठग' नेह ते तो मुख मोरियो ना ।
यह मानिये मेरी निहोर लला, तुम लाल गुलाल सों बोरियो ना ॥६॥

[हेमन्त]

मानिक महल बीच मानिक कपाट दिये,
फरस गलीचा लंफ रोसनी लसंत मैं ।
मखमली गद्दी 'ठग' राजत उसी सा सेज,
बाजत मृदंग बीन तान सुरतंत मैं ॥
अंबर अतर मृगमद तें सुबासि अंग,
भाँति-भाँति मेवे पान मद के छकंत मैं ॥
सिमिटि दुलाई द्वै लुगाई लपटाई रैन,
तौहू दुख देत सीत प्रबल हिमंत मैं ॥७॥

पंडित अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र'
(लेखक; प्रौढावस्था में)

'ठग' कवि पहले महाराज राधा प्रसाद सिंहजी के आश्रय में रहकर 'राजकुमारजी' नामक ठाकुरजी की पूजा करते थे। किन्तु कुछ दिनों के बाद पराधीनता की बेड़ी तोड़कर परदेश-परिभ्रमण के लिये निकल गये। घूमते-घामते दरभंगा में पहुँचे। उस समय (स्वर्गीय) महाराज लक्ष्मीश्वर सिंहजी* पटना के दरबार में लाट साहब से खिताब लेकर दरभंगा में आनंदोत्सव मना रहे थे। उसी दरबार में उपस्थित होकर इन्होंने निम्नलिखित पद्य पढ़े—

[घनाक्षरी]

महाराज आये सब सोभा के समाज-युत,
डेरा कियो तितै जितै जाको मन भायो है।
दियो है खिताब लाट साहब जू पटना में,
राजन समाज 'ठग' मुख ते सुनायो है।
सोभा को समाज लैके पुर को पधारे जबै,
तबही ते जाचकन रतन लुटायो है।
आनंद बधाई बाजै लक्ष्मीश्वरसिंहपुर,
मानों राजगद्दी माँह अवध सुहायौ है॥

[सवैया]

पाटलिपुत्र सुआइगो लाट त्यौं आनंदयुक्त बुलाइ नृपालन।
भाई भुपालन के सँग लै सुभ द्यौस मैं खिल्लत दै हियहालन।

* 'महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह' नामक सचित्र पुस्तक चार आने में मिलती है, जो पुस्तक-भंडार (लहेरियासराय) से प्रकाशित हुई है।

तापै कहे नृप जाहु घरे 'ठग' नित्य हरो दुखिया-दुखजालन।
बिज्ञ सुजान तऊ उपदेस दै नीति सो राज करो तुम पालन ॥

महाराज ने प्रसन्न हो इनको प्रचुर पुरस्कार देकर संतुष्ट किया।

इसके बाद ये मकसूदपुर के राजा के दरबार में पहुँचे। राजा साहब ने एक समस्या दी, जिसका भावाथ यह था कि 'उसने छ को शंकित और एक को अशंकित पकड़ा'; यह भी कहा कि चोरी मत कीजियेगा। इन्होंने उत्तर दिया कि आपके समान जागरूक पाहरू के समय चोरी नहीं हो सकती।

राजा साहब की कविता का भाव यह था कि जब अगस्त्यजी समुद्रों को पीने के लिये चले तब छ समुद्र डर गये (शंकित हो गये) कि हमें मीठा समझकर अगस्त्यजी सुखपूर्वक पी जायँगे; किन्तु खार समुद्र निःशंक था कि मैं खारा हूँ, मुझे पीने में अगस्त्यजी को बड़ा कष्ट होगा, इसलिये घबराकर मुझे छोड़ देंगे, न पीयेंगे।

'ठग' कवि के पद्य का भाव यह था कि एक दिन श्रीकृष्ण वन में घूम रहे थे। वहाँ सात गोपिकाएँ मिलीं, जिनमें छ प्रौढ़ा थीं और एक मुग्धा। जब कृष्ण ने उनको पकड़ा तब छओ मुग्धा थीं, इसलिये डरती थीं; किन्तु एक प्रौढ़ा थी, इसलिये न डरी।

सचमुच कवि ने चोरी नहीं की, वरन् अपनी मौलिकता दिखाई। राजा ने प्रसन्न होकर बिदाई की।

खेद है कि वह पुरस्कृत कविता मुझे याद नहीं है।

उनचास वर्ष की अवस्था में 'ठग' कबि का देहान्त हो गया।

इनके पुत्र पंडित विश्वनाथ मिश्रजी विद्यमान हैं और सिद्धि का सेवन कर सिद्धिनाथ होकर बैठे रहते हैं। आप व्याकरण, काव्य तथा ज्योतिष के ज्ञाता हैं। आप अकष्ट पुरुष हैं, कष्ट आपके समीप कभी फटकने नहीं पाता।

हाँ, पं० संगम मिश्रजी कुछ दिनों तक श्रीमान् महाराज महेश्वर सिंहजी के दानाध्यक्ष थे। किन्तु जब महाराज ने पुराने तालाब पर पंचमंदिर बनवाकर उसमें 'श्रीराजेश्वरजी' नामक सीतारामजी की मूर्त्ति स्थापित की, तब इन्हीं को पूजा-अर्चा का भार देकर पुजारी बना दिया।

इनके प्रथम विवाह से एक पुत्र हुआ—तुलसीमिश्र, जो सयाना होने पर युवराज राधाप्रसाद सिंहजी के मुसाहब नियत हुए—सदा क्षत्रिय-वेश में युवराज के संग रहते थे; जब युवराज शाम को हवा खाने जाते तब भी घोड़े पर उनके साथ जाते; पच्चीस रुपये मासिक वेतन और पन्द्रह रुपये मासिक घोड़े के लिये मिलते थे।

इनके द्वितीय विवाह से मेरे पूज्य पिता श्रीराजेश्वर मिश्र जी का जन्म हुआ। फिर एक कन्या हुई जिसका नाम 'रत्नपाली' पड़ा। जिस साल मेरे दादाजी राजेश्वरजी के पुजारी बनाये गये, उसी साल मेरे पिताजी का जन्म हुआ। इसीलिये वही ठाकुरजी का नाम मेरे पिता का नाम रखा गया।

डुमरावँ-राज्य में शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का बड़ा अधिकार था। गुरु, पुरोहित, पौराणिक, पुजारी, वैद्य, पाचक आदि सभी अधिकारी शाकद्वीपीय ब्राह्मण ही थे।

यहाँ के वैद्य एक प्रतिष्ठित वंश (पुर खँटरवार) के हैं। इनमें लालजी मिश्र एक नामी वैद्य हो गये हैं। ये नाड़ी-परीक्षा करने में अद्वितीय थे। इनके पुत्र अनन्त मिश्रजी, वैद्य के अतिरिक्त, ब्रह्मज्ञानी भी थे। आपकी यह हालत थी कि अपनी पुष्पवाटिका में एकान्त चबूतरे पर बैठकर बड़े प्रेम से निम्नलिखित पद्य गाया करते थे और दोनों नेत्रों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होती थी—

(१) जैबे की नाहीं भौंरा ओह सैयाँ के देस, जैबे की नाहीं भौंरा।
जो जो गये सो पलटि न आये, कैसन वह देस, जैबे—
"यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम।" (भगवद्गीता की छाया)

(२) चैत मासे पिय जात, तन कैसे राखब रामा।
गवने करि पिय गवने, नव वय तजि जात, तन कैसे राखब रामा।

आपको मरने के समय अद्वैत ज्ञान हो गया था। आप ही के चचेरे भाई पं० शिवगोविन्द मिश्रजी वैद्य के साथ मेरी पूजनीया फूआ 'रत्न-पालीजी' का विवाह हुआ। उनसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए—व्रजनाथमिश्र (विरिजाजी), अर्जुन मिश्र और भीमसेन मिश्र। व्रजनाथ मिश्र विहारीजी के मंदिर में पुजारी बनाये गये—ये शृङ्गार करने में सुदक्ष थे। मझले पुत्र अर्जुनजी युवावस्था ही में परलोकवासी हुए; किन्तु पढ़े-लिखे मनुष्य थे। तृतीय पुत्र पं० भीमसेन मिश्रजी आजकल डुमराँव-राज्य में दानाध्यक्ष तथा राजकीय देवमन्दिरों के निरीक्षक हैं।

स्वर्गीय महाराज केशव प्रसादसिंहजी ने प० भीमसेन मिश्रजी

को राज्य का प्रधान वैद्य बनाया था और इसकी सनद भी निज हाथों से लिख दी थी। गायकवाड़-बड़ोदा-राज्य के आयुर्वेद-विद्यापीठ से इनको आयुर्वेद-पंचानन का प्रतिष्ठित पद प्राप्त हुआ है। ये रस, अर्क, आसव, अरिष्ट आदि बनाने में सिद्धहस्त हैं। चिकित्सा करने में बड़े प्रवीण हैं। नगर तथा समस्त भोजपुर-प्रान्त में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। डुमराँव-म्युनिसिपैलिटी के म्युनिसिपल कमिश्नर भी हैं। शाकद्वीपीय ब्राह्मण-समाज में भी इनकी पूरी प्रतिष्ठा है। ये बड़े ही मिलनसार, दयालु तथा कविताप्रिय हैं। धन-जन से परिपूर्ण हैं। इन्होंने भारत के परम प्रसिद्ध वैद्य काशी-निवासी प्राणाचार्य श्रीमान् त्र्यम्बक शास्त्री जी तथा काशी के प्रह्लाद-घाट-निवासी श्रीरघुनाथजी वैद्य से वैद्यक के प्रधान-प्रधान ग्रन्थों को पढ़ा है। ये अपने घर पर अवकाश-काल में छात्रों को वैद्यक-शास्त्र तथा क्रिया की शिक्षा देते हैं।

हम तीन भाई हैं। मुझसे १४ वर्ष छोटे मझले भाई शाम्भवी प्रसाद मिश्र हैं। कुछ दिन डुमराँव-राज्य में, कुछ दिन (१४ वर्ष) छोटानागपुर-प्रान्त के 'पलामू' जिले के 'रंका'-राज्य में, पुजारी होकर देवार्चा कर चुके हैं। अब रायबहादुर हरिहर प्रसाद सिंहजी (बाबू हरीजी का आश्रय पाकर बर्मा-प्रान्त में निवास करते हैं। इनको एक कन्या तथा एक पुत्र है। कन्या का विवाह शेरपुर-(जिला पटना)-निवासी पं० काशीप्रसाद मिश्रजी के चतुर्थ पुत्र महेश्वर मिश्र के साथ हुआ है—ये राधाश्यामजी की रामायण की कथा बड़ी सुन्दरता से कहते हैं। पुत्र डमरेश्वर मिश्र का विवाह 'पुनपुन'-नदी-तटस्थ श्रीपाल-

पुर-निवासी पं० गणपति मिश्रजी की प्रथम कन्या के साथ हुआ है—ये अभी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

मुझसे १६ वर्ष छोटे मेरे लघु भ्राता शारदा मिश्र, पिताजी के स्वर्गवास से लेकर आजतक, पिताजी के स्थान पर रहकर कार्य करते हैं। ये व्याकरण तथा वेद अच्छा जानते हैं। इनकी एक कन्या मात्र है जो अभी केवल नव वर्ष की है।

मेरी चार बहनें थीं—दो मुझसे बड़ी और दो मुझसे छोटी। बड़ी दोनों विवाहित होकर कुछ काल के बाद विधवा होकर स्वर्गवासिनी हुईं। तीसरी विधवा होकर जीती है जिसके दो पुत्र अनाज्ञाकारी और विशृंखल हैं। चौथी अपने पति के जीवन-काल ही में एक कन्या मात्र छोड़कर परलोकगामिनी हुई।

मेरे पिताजी की सचित्र जीवनी मेरे फुफेरे भाई पं० भीमसेन मिश्र राजवैद्य ने पुस्तकाकार में लिखी थी, जो 'मेरठ' (मयराष्ट्र) के 'कर्जन प्रेस' में छपी थी। फिर मेरे परम प्रिय सखा, मुजफ्फरपुर के धर्म-समाज-संस्कृत-कालेज के वर्त्तमान प्रिंसिपल, 'देकुली' (शाहाबाद)-निवासी पंडित धर्मराज ओझा एम. ए. काव्यतीर्थ ने भी मेरे पिताजी का संक्षिप्त सचित्र जीवन-चरित्र लिखा था, जो 'बालक' (वर्ष ३, अंक ५, ज्येष्ठ, संवत् १९८५ वि०,पृष्ठ २७०) में प्रकाशित हुआ था।

मेरे पितामह (दादा) श्रीसंगम मिश्रजी का जब देहान्त हो गया तब चाचाजी (तुलसी मिश्रजी) ने श्राद्ध किया। दुर्दैववश छः महीने

के बाद उनका भी शरीरान्त हो गया। मेरी पितामही (दादी) का शरीरान्त तो दादाजी के जीवन-काल ही में हो चुका था, इसलिये मेरे पिताजी अनाथ बालक हो गये। महाराज भी भूल ही गये। हाँ, मेरे पिताजी की काकी (जानकी मिश्रजी की विधवा) ने दया करके मेरे पिता का पालन-पोषण किया। मेरे दादा तथा चाचाजी की कमाई हुई सम्पत्ति घर में थी, इसलिये काकीजी को पालन-पोषण करने में कष्ट नहीं हुआ।

सोलह वर्ष की अवस्था में, डुमरावँ के निकटवर्त्ती मँझवारी-ग्रामनिवासी शाकद्वीपीय विप्र पं० रामयाद पाठक की प्रथम कन्या के साथ पिताजी का विवाह हुआ। फिर पाठकजी की द्वितीय कन्या से मेरे लघु पितृव्य (पिताजी के चचेरे भाई अर्थात् उक्त काकीजी के पुत्र) ठग मिश्रजी का विवाह हुआ। दोनों मंगल-कार्य साथ ही हुए।

मेरे पिता बड़े ही सुन्दर पुरुष थे। ब्रह्मचर्य के अनन्य पक्षपाती थे। इसलिये उनके मुख पर एक दिव्य प्रभा प्रसरित होती रहती थी। लाल-लाल बड़े-बड़े नेत्र थे। ललाट उन्नत था, उसपर स्वच्छ विभूति का त्रिपुंड्र चमकता था। नाक ऊँची और सुडौल थी। अधरोष्ठ रक्त-वर्ण तथा निर्मल थे। कन्धे पर दिव्य यज्ञोपवीत लटकता रहता था — गले में रुद्राक्ष की माला। श्वेतवर्ण उपरना और कमर में स्वच्छ धोती। बड़ी भव्य मूर्त्ति थी।

इसी वेश में एक दिन मेरे पिताजी श्री विहारीजी के विशाल मंदिर

की परिक्रमा कर रहे थे। उसी समय महाराज महेश्वर बख्श सिंहजी की दृष्टि उनपर पड़ी। महाराज ने उनको अपने पास बुलाकर परिचय पूछा। पिताजी ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। महाराज ने अपनी विस्मृति पर खेद प्रकट करते हुए कहा—जो बीत गई सो बीत गई, अब तुम आज से मेरे युवराज के साथ रहो और उनके साथ ही रहकर ठाकुरजी की पूजा करो।

उसी दिन से पिताजी का भाग्योदय हुआ तथा बहुत बड़ा सहारा मिला। पिताजी युवराज राधाप्रसाद सिंहजी के आश्रय में रहने लगे और वहीं अपना समग्र जीवन व्यतीत किया।

पिताजी परम ईश्वर-भक्त थे। कभी-कभी विहारीजी के मंदिर में बैठकर बड़े प्रेम से गाया करते थे—

"फूलन की माला हाथे, फूली फिरें आली साथे।
उझकि झरोखे झाँके नन्दनी जनक की।१।
देखि रघुनाथ सोभा, सियाजी को मन लोभा।
एक टक ताके मानों पुतरी कनक की।२।
कोमल कुअँर गात, को कहे पिता सो बात,
छाड़ि दे प्रतिज्ञा तात, धनुष तोड़न की।३।
तुलसी हिये में जानी, तुरिहैं पिनाक तानी,
छोटी-सी धनुहियाँ मानों लरिका खेलन की" ॥४॥

"कमठपृष्ठकठोरमिदंधनुर्मधुरमूर्त्तिरसौ रघुनन्दनः।
कथमधिज्यमनेन विधीयतामहह तात पणस्तव दारुणः।"

दीवाना तू सियवर सो नहिं सटा। धिक् भगवा धिक् जटा।१।
काह भये कुलकटा भये ते काह भये कनफटा।
राम राम रटि ये नहिं बन्दे, परमारथ-रस चटा।२।
ज्ञान सीखि के आप ब्रह्म भये, विषयन सो नहिं हटा।
छिन नीचे छिन ऊपर दौरत, जैसे नट को बटा।३।
इन्द्रादिक देवन मैं जाकी रती रती की छटा।
ताको निरखि मोर मन हरखित जस सावन-घन-घटा।४।

पिताजी का चरित्र बड़ा ऊँचा था। बड़े ही परोपकारी थे। पाप से बहुत डरते थे। पवित्रता की मूर्त्ति थे। "आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः"—यही उनका सिद्धान्त था। महाराज राधा प्रसाद सिंह को छोड़कर किसी दूसरे के हाथ से कुशोदक नहीं लिया—न किसी के घर भोजन करके दक्षिणा ली। अपने बिछौने पर किसी को बैठने नहीं देते थे। आगत जनों के लिये दूसरे आसन तैयार रखते थे। रास्ते में बहुत बचकर चलते थे, जिससे किसी से स्पर्श न हो जाय। द्विकाल संध्या करते थे। प्रति दिन हरिकथा श्रवण करते थे। स्वयं भी पुराण-पाठ करते थे। देवता, द्विज, गौ में बड़ी श्रद्धा रखते थे।

महाराज राधाप्रसादसिंह के बाद श्रीमती महारानी वेणीप्रसाद कुअँरि की सेवा में रहकर, उदर-रोग से पीड़ित होकर, ६६ वर्ष की अवस्था में, काशी के प्रह्लाद-घाट पर पाँच दिन निवास करने के बाद, ज्ञानपूर्वक शिव-शिव कहते हुए, पिताजी कैलासवासी हुए। वे काशी

के परम प्रसिद्ध विद्वान् संन्यासी श्री १०८ रामनिरंजन स्वामीजी के प्रिय शिष्य थे।

मरने के बाद और लोगों का मुख भयंकर हो जाता है, किन्तु आश्चर्य है कि पिताजी का मुख अत्यन्त प्रसन्न तथा हँसता देख पड़ता था। मणिकर्णिका पर दाहक्रिया करके मैं डुमरावँ चला आया। शेष श्राद्धकृत्य बड़ी श्रद्धा के साथ डुमरावँ में ही समाप्त किया। मैं सदा के लिये अनाथ हो गया। मेरी पूजनीया माताजी अभी जीवित हैं। इस समय (१९९६ वि० सं० में) उनकी अवस्था ९८ वर्ष की है। पिताजी के कैलासवासी हुए आज ३३ वर्ष हो गये।

तृतीय अध्याय

शिक्षा-दीक्षा

मेरा जन्म विक्रम-संवत् १९३१ में, ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी (बुधवार) को, चित्रा नक्षत्र के तृतीय चरण में, हुआ। मैं ही पिताजी का प्रथम पुत्र हूँ। मेरे पिताजी ने इसी वर्ष में प्रयाग-यात्रा करके पितरों का पिंडदान किया था। सबको विश्वास हुआ कि इसी पुण्य-कार्य से पुत्र हुआ है। इसलिये प्रयाग के सर्वप्रधान देवता के नाम पर मेरा नाम 'अक्षयवट' रखा गया।

पाँच वर्ष की अवस्था में पिताजी ने मेरा अक्षरारम्भ कराया। आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ। पिताजी ने ही गायत्री-मंत्र का उपदेश दिया, इसलिये वे मेरे गुरु भी थे। पहले 'लघुकौमुदी' और 'अमरकोष' पिताजी ने पढ़ा दिया। इसके बाद महाराज राधाप्रसादसिंहजी के व्यास निखिलशास्त्रनिष्णात श्री पंडित चन्द्रमणि पांडेयजी से मैंने 'सिद्धांत-कौमुदी' पढ़ना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे शब्दरत्न, मनोरमा, परिभाषेन्दुशेखर, शब्देन्दुशेखर, भूषण, मंजूषा, नवाह्निकमहाभाष्य तक इन्हीं से पढ़ा। ये बड़े वावदूक थे। शास्त्रार्थ में इनकी वाणी नहीं रुकती

थी। ये हँसते जाते थे और शास्त्रार्थ भी करते जाते थे। इनका रूप छोटा था और झुककर चलते थे। ये महाराज की सभा के भूषण थे। जो महाराज की सभा में जाता था उसको इन्हीं से शास्त्रार्थ करना पड़ता था। महामहोपाध्याय बालशास्त्री, महामहोपाध्याय शिवकुमार मिश्र, साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास आदि विद्वानों को इन्हीं से शास्त्रार्थ करना पड़ा था। बालशास्त्री ने इनकी प्रशंसा की थी।

व्याकरणशास्त्र के बाद मेरी काव्य पढ़ने की इच्छा हुई। डुमरावँ-राज-हाई-इंगलिश स्कूल के हेडपंडित श्री शिवबालक त्रिपाठीजी से मैं काव्य पढ़ने लगा। क्रमशः रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, साहित्यदर्पण इन्हीं से पढ़ा।

और लोगों की देखादेखी हिन्दी-काव्य सीखने की मेरी अभिलाषा हुई। तब महाराज के दरबारी कवि पंडित राधावल्लभ जोयसीजी (विप्रवल्लभ कवि) से श्रुतबोध पिंगल (संस्कृत ग्रंथ), जगद्विनोद, भाषाभूषण, नागराज-रचित प्राकृतपिंगल पढ़ा। छन्द-रचना की प्रक्रिया भी इन्हीं ने सिखलाई।

इनके प्राचीन पुरुष जयपुर से नव कोस पच्छिम 'बगरू' गाँव के रहनेवाले आदिगौड़ ब्राह्मण थे। इनके पितामह पुष्कररामजी अपनी जन्मभूमि से जगदीशधाम (पुरी) की यात्रा के लिये अपने पुत्र काशीरामजी को लेकर पैदल ही निकल पड़े। पुरी से लौटते समय डुमरावँ में आ गये। अच्छे भजनानंदी थे। एकतारा लेकर बड़े प्रेम से अत्यन्त मधुर मनोहर भजन गाते थे। महाराज महेश्वरबख्श सिंह बड़े

ही गुणग्राही थे। भजन-गान से प्रसन्न होकर अपनी राजधानी में सदा के लिये निवास करने का आग्रह किया। पुष्कररामजी महाराज की बात मानकर रह गये।

महाराज ने काशीरामजी को अपने शिवालय का पुजारी बनाया। काशीरामजी के दो पुत्र हुए—प्रथम व्रजकिशोरजी तथा द्वितीय राधावल्लभजी। व्रजकिशोरजी 'बड़ाबाग' के शिवालय के पुजारी बनाये गये और राधावल्लभजी विहारीजी के पूर्व-भाग-स्थित शिवालय के पुजारी तथा दरबारी पंडित बनाये गये।

व्रजकिशोरजी के दो पुत्र हुए—रामकिशोर भट्ट और कृष्णकिशोर भट्ट। प्रथम विवाहित होकर कुछ दिनों के बाद स्वर्गवासी हो गये—ये कुछ कविता भी करते थे। द्वितीय अद्यापि जीवित हैं—इस समय इनकी अवस्था ६९ वर्ष की है।

राधावल्लभजी के एक पुत्र मथुराप्रसाद थे, जो ज्योतिष के बहुत ही अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने 'प्रश्नपंचानन' आदि ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। एक ग्रन्थ में इन्होंने सौ वर्षों के ग्रहणों का काल तथा पुरुषोत्तम मासों का साल-संवत् सौ वर्ष पहले ही लिख दिया है। ये मेरे पिताजी के परम मित्र थे। मेरी जन्म-कुंडली इन्हीं की बनाई हुई है। ये विवाहित होकर कुछ दिनों के बाद युवावस्था ही में सपत्नीक स्वर्गवासी हो गये। पिताजी का यह शोक मरणान्त नवीन ही बना रहा।

कविजी की दो कन्याएँ थीं—प्रथम सुशीला देवी, द्वितीय ललिता

देवी। पहली का विवाह पंडित श्यामलालजी से हुआ था, जो मुर्शिदाबाद की महारानी स्वर्णमयी के दरबार में ज्योतिषी थे। दूसरी का विवाह काशी के सुप्रसिद्ध कवि तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के साथी पं० मन्नालालजी के द्वितीय पुत्र उमाप्रसाद उपाध्याय के साथ हुआ था।

पं० मन्नालालजी अच्छे कवि थे। 'बरवा'-छंद इनको बड़ा प्रिय था। ये बरवा-छंद बहुत बनाते थे। उदाहरण देखिये—

बंदत हौं कर जोरे रोज-ब-रोज।
राधा राधावर के चरन-सरोज ॥१॥
पुनि बंदहुँ गोपिन की पायँन धूरि।
निर्गुन भयो सगुन जिहिं प्रेम बिसूरि ॥२॥

भारतेन्दुजी ने बहुत-सी प्राचीन सवैयों का संग्रह करके 'सुन्दरी-तिलक' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित कराया था। इसके बाद मन्नालालजी ने एक ग्रन्थ 'सुन्दरीसर्वस्व' प्रकाशित कराया जिसमें उससे चौगुनी सवैयाँ थीं। इन्होंने एक 'श्रृंगार-सुधाकर' नामक वृहद् ग्रन्थ प्रकाशित कराया जिसमें लगभग एक हजार कवित्त (मनहरण तथा घनाक्षरी छन्द के पद्य) थे। जब ये डुमरावँ में अपने समधी 'विप्र-वल्लभ कवि' के घर आये, तो मैं वहीं पढ़ रहा था। इन्होंने निम्न-लिखित बरवा छन्दों को स्मरण करने के लिये मुझे लिखवा दिया—

"वंदे चरणसरोजं तव रघुवीर।
मुनिललनामिव नावं मा कुरु धीर ॥"

"काशी तो बहिरीहा गन्तुं यस्य।
मूर्खशिरोमणिमध्ये गणना तस्य।"
"मन्दाकिनि बड़ डाकिनि अजगुत कीन।
पातक मोर बेटवना सो हरि लीन॥"

मैंने भी एक 'बरवा' बनाकर उनको सुना दिया जो मेरा प्रथम काव्य होने के कारण अच्छा नहीं हुआ—

"अक्षयवटकृत बरवा पढ़े जो धीर।
ता कहँ बिधि हरिहरवा देहिं न पीर॥"

'विप्रवल्लभ' कवि संस्कृतज्ञ भी थे। इसलिये इनके काव्य गंभीर होते थे। उस समय डुमरावँ में प्राकृत-भाषा जाननेवाला कोई विद्वान् नहीं था। इसलिये बहुत-से छात्र इनसे प्राकृतबद्ध नागराज का पिंगल पढ़ने के लिये आया करते थे। इनकी कविता में प्राकृत शब्दों का भी समावेश रहता था। दो-एक उदाहरण देखिये—

उदधि मथैया, कालीनाग को नथैया प्रभु,
द्रुपदसुता को बर चीर बढ़वैया है।
ब्रज उबरैया, कर छिगुनी करैया गिरि,
इन्द्र को झरैया मद, बल को सुभैया है।
मुरली ररैया, मोर मुकुट लसैया सीस,
पाप को हरैया, धर्मधुर को धरैया है।
नन्द को कन्हैया, नन्दरानी को पिवैया दूध,
विश्व को भरैया 'बिप्रवल्लभ' सहैया है॥१॥

नैनन गुरेरन तें, दंत के दरेरन तें,
मुंड झकझोरन तें, रोगन को झोरैगो।
कहै 'बिप्रवल्लभ' गजानन कृपा को करि,
निज जन दीनन के फन्दबन्द छोरैगो ॥
टेरे कहि टेरन ते, अंगभट भेरन तें,
पद के दबेरन तें दारिद दबोरैगो।
तोरि सुंड दंड तें, बिलोरि दोरदंडन तें,
मेरे बिघ्नबृन्दन को बारिधि में बोरैगो ॥२॥

[वर्त्तमान सामाजिक सवैया]

द्वापर में अरु त्रेतहु में सुर ही द्विज-देवन तें भुवि मंडित।
'बल्लभ' या कलिकालहिं में स्मृतिवेदन तें न कोऊ नर खंडित ॥
ऊँच न नीच न जानि सके सब जाति संन्यासी सबै नर पंडित।
है नहिं भूप कोऊ जग में जो करै इनको निज दंडन दंडित ॥

कभी-कभी इनकी कविता एकदम नया भाव लेकर अवतीर्ण होती थी। देखिये, ये क्या कहते हैं—

सोवति अटा पै इक नागरि नवेली अति-
रूप तिलउत्तमा ते उत्तम तुलै रह्यो।
उघरे उरोजन पै जाल सो प्रकास पेखि
भ्रमित अली को भ्रम 'बल्लभ' मिटै रह्यो।
बदन मयंक अकलंक लखि गोखन तें
अमरष तें कूद्यो अरी मेरे मन ठै रह्यो।
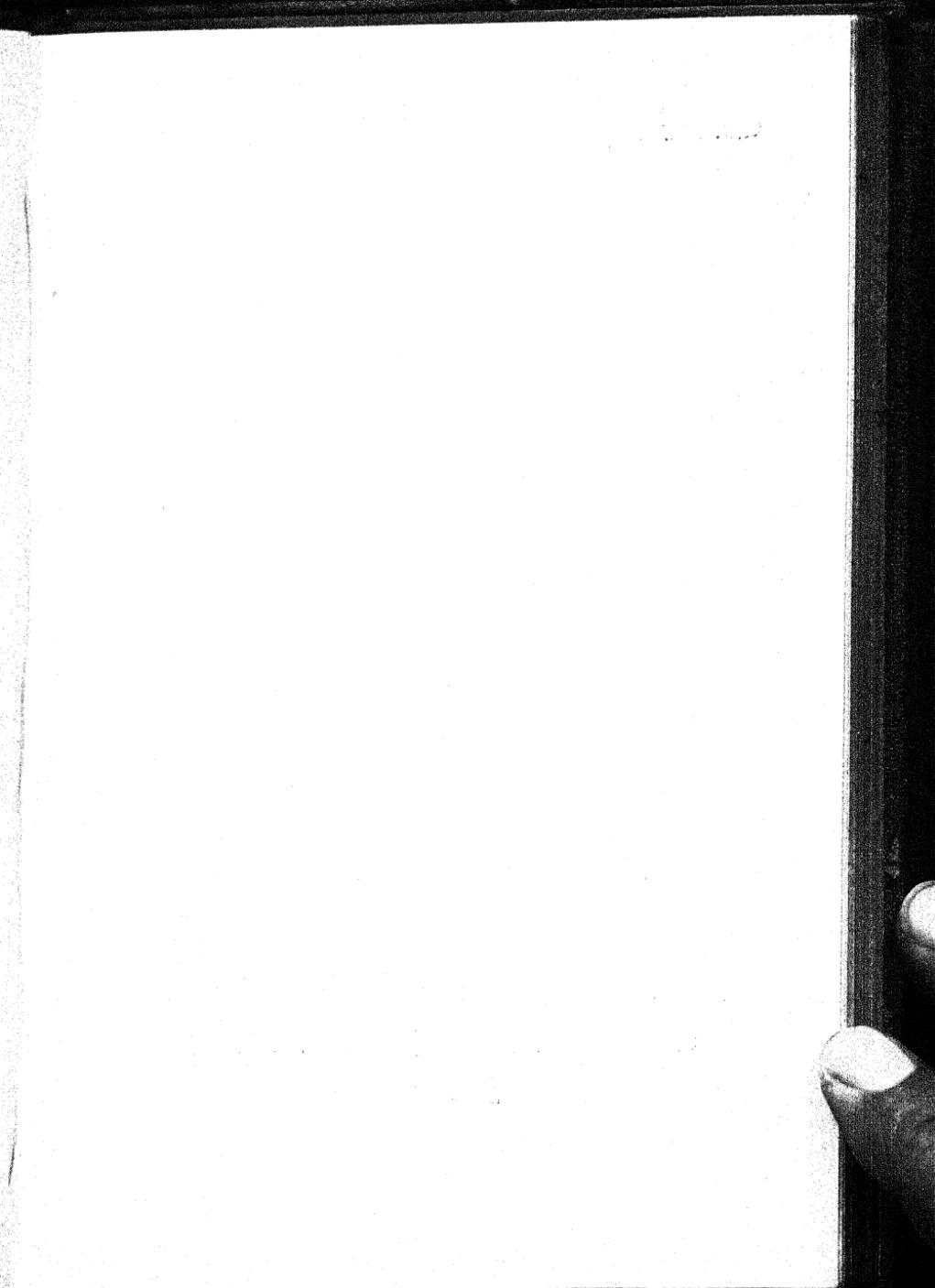
श्रीमती लगनमानी कुँअरि (लेखक की धर्मपत्नी)

[पृष्ठ ५०]

कठिन कुचोपरि चकि दूर तें गिर्‌यो यातें
देखि यह चंद ताते टूक-टूक ह्वै रह्यो ॥

*　　　*　　　*

सोनजुही सी राधिका, अतसि-कुसुम सो स्याम ।
मो हिय-चमन बसंत मैं, फूले रहैं मुदाम ॥

इनकी कविता बहुत सरस और सुन्दर होती थी—इनके बनाये रसिक-रंजन रामायण, रसिकोल्लास भागवत, अंगरत्नाकर, कृष्णामृत-ध्वनि, भाषाश्रुतबोध, अमृतलतिका आदि ग्रंथ देखने के योग्य हैं। इनकी जीवनी 'देवनागर' में विस्तारपूर्वक छप चुकी है।

बहुत दिन हुए, कलकत्ता से 'देवनागर' निकलता था। उसी में मैंने 'पंडित दुर्गादत्त परमहंस' की जीवनी भी लिखकर छपवाई थी। बिहार के यशस्वी साहित्यसेवी बाबू यशोदानन्दन अखौरी ने भी उसका सम्पादन किया था।

जब मेरी अवस्था सोलह वर्ष की हुई, तब विवाह की चर्चा होने लगी। पिताजी ने सम्बन्ध स्थिर करने का भार श्रीमान् महाराज ही को दिया। कई स्थानों के शाकद्वीपीय ब्राह्मण आये; पर महाराज ने 'आरा'-नगर-(मिश्रटोला)-निवासी पंडित दुर्गादत्त मिश्रजी की छोटी कन्या के साथ मेरा विवाह स्थिर किया। महाराज की इच्छा थी कि नागरी कन्या घर में आवे। शुभ लग्न में (विक्रम संवत् १९४६ में) विवाह हुआ। उस बारात में महाराज के दरबार के सभी गण्यमान्य सज्जन सम्मिलित हुए।

उस समय मेरी सुन्दरी पत्नी की अवस्था केवल १३ वर्ष की थी। हृदय का आदान-प्रदान समस्त जीवन-भर के लिये हो गया। रूप-शोभा देखकर चित्त वशीभूत हो गया।

"अधरः किसलयरागः कोमल विटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव प्रलोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥"

मेरे परिवार के सभी लोग इनके रूप-गुण तथा शील-स्वभाव से प्रसन्न हो गये। मेरे पिताजी पाक-क्रिया में बहुत ही प्रवीण थे। उन्होंने बड़े स्नेह से मेरी धर्मपत्नी को पाक-कला सिखलाकर इस क्रिया में कुशल बना दिया।

हाँ, मैं अपनी ओर से इतना कह देता हूँ कि इनमें स्वच्छता, पवित्रता, दया, उदारता, क्षमा आदि सभी उत्तम गुण हैं; किन्तु स्वभाव में कुछ उग्रता अवश्य है, जिससे मुझे सदा के लिये कोमल तथा शान्त होकर रहना पड़ता है। कभी-कभी कुछ उद्वेग होने पर भी चुप ही रहना पड़ता है।

जो हो, मैं दाम्पत्य सुख से सुखी हूँ। सदा इनको साथ रखता हूँ। तीर्थ, व्रत, दान, पुण्य, सभी कार्य इनके साथ ही करता हूँ। इनकी प्रतिष्ठा भी बहुत करता हूँ। अधिकार भी बहुत दे दिये हैं।

जिसने मेरे लिये जन्मभूमि, भाई, पिता-माता, कुल-परिवार, मान-मर्यादा, सबका त्याग किया, उसके प्रति मेरा भी तो कुछ कर्त्तव्य है।

मैंने बहुत-से (लगभग चौदह) यूरोपीय विद्वानों को हिन्दी तथा संस्कृत पढ़ाया-सिखलाया। मैंने उनसे तीन बातें सीखीं—स्त्रियों की

प्रतिष्ठा करना, समय को मूल्यवान् समझना—अर्थात् व्यर्थ नष्ट न करना, और सत्य बोलना—अर्थात् कोई काम करने या न करने की बात स्पष्ट शब्दों में कह देना।

प्रत्येक साहित्यसेवी को एक-पत्नीव्रत होना चाहिये।

मेरी इच्छा हुई बाहर जाकर कुछ शिक्षा ग्रहण करने की। इसलिये मैं पूज्य पिताजी से बिना आज्ञा लिये ही, रात को, अपने मित्र शिवनन्दन त्रिपाठी के साथ, घर से निकल पड़ा। श्रीअयोध्यापुरी में जाकर, सरयूबाग की संस्कृत-पाठशाला में प्रवेश करके, श्रीमान् पंडित चन्द्रभूषणजी तथा महामहोपाध्याय शशिनाथ झा जी से व्याकरण पढ़ने लगा। पाठशाला की ओर से हम दोनों को वृत्ति मिलने लगी।

श्रीमान् अयोध्या-नरेश महामहोपाध्याय आनरेब्ल महाराज सर प्रतापनारायणसिंह के० सी० आइ० ई० के दरबार में एक दिन हम दोनों उपस्थित हुए। महाराज ने पाँच-पाँच रुपये देकर हम दोनों को उत्साहित किया।

'सुरसरि' की रानीसाहबा ने 'सहस्रचंडी' पाठ कराने का विचार किया। इसलिये परीक्षा लेकर उत्तीर्ण विद्यार्थियों को भरती करने का नियम स्थिर किया गया। सौ विद्यार्थियों की आवश्यकता थी। अयोध्या में अनेक पाठशालाएँ थीं। इसलिये प्रावृट् काल के मेघ के समान असंख्य विद्यार्थी उमड़ पड़े। सबकी परीक्षा हुई। सौ उत्तीर्ण छात्र चुन लिये गये। परीक्षा में श्लोक पाठ कराया जाता था और अर्थ भी पूछा जाता था। मैं परीक्षोत्तीर्ण हो गया। मेरी भरती भी हुई। मेरे

प्रिय साथी शिवनन्दन त्रिपाठी अनुत्तीर्ण होने के कारण बड़े हताश हुए। पाठ समाप्त होने पर मुझे जो रुपये-कपड़े मिले उनमें से आधा हिस्सा अपने साथी शिवनन्दन त्रिपाठी को दे दिया।

श्रावण का महीना आ गया। झूलन की तैयारी होने लगी।

कोई ग्यारह महीने अयोध्या में निवास करे और श्रावण में यदि अभाग्यवश कहीं बाहर चला जाय तो सब निवास व्यर्थ हो जाता है। कारण, अयोध्या की शोभा श्रावण ही में देखने लायक होती है। कोई ऐसा मन्दिर, छोटा या बड़ा, न होगा जिसमें योग्यतानुसार झूलन की तैयारी न होती हो। हाँ, कनकभवन, रतनसिंहासन, स्वर्गद्वार आदि का झूलन नामी है।

सबसे बढ़कर तैयारी होती थी महाराज के किले के भीतर श्रीराधा-माधवजी के मंदिर में। महाराज बड़े ही उत्साह से प्रति दिन, एकादशी से पूर्णिमा तक, नवीन तैयारी कराते थे। स्वर्गद्वार के समीप श्रीराधाव्रजराजजी का मन्दिर सफेद पत्थरों से बनवाया था। वहाँ भी अच्छी तैयारी होती थी।

अवधेश महाराज बड़े ही धर्मात्मा, मिलनसार, दयालु, प्रजावत्सल, नम्र, सर्वप्रिय, साहित्य-प्रेमी तथा भगवद्भक्त थे। वैसा राजा कदाचित् अब अयोध्या की गद्दी पर नहीं बैठेगा। उन्होंने बड़ी श्रद्धा और प्रीति से राजभवन, देवमन्दिर, पुष्पोद्यान आदि का निर्माण कराया था।

श्रावण शुक्ल तृतीया को मणि-पर्वत पर बहुत बड़ा मेला लगा। सब मन्दिरों के ठाकुरजी विमान पर चढ़कर मणि-पर्वत के पास पहुँचे।

वृक्षों की डालियों में झूलन (हिंडोले) लटकाये गये। कुछ देर उनमें ठाकुरजी झूले। सूर्यास्त होने पर सब ठाकुरजी अपने-अपने मन्दिरों में लौट आये।

प्रत्येक मन्दिर में केवल बालकों का नाच होता था। वहाँ वेश्या के नृत्य की प्रथा बहुत कम है। दो-एक मन्दिरों में वेश्याओं का भी नाच होता था। उस समय एक नामी वेश्या फैजाबाद में थी, जिसका नाम था 'मुनक्का'। वह नियमित रूप से किसी मन्दिर में बारहों दिन नहीं नाचती थी। उसका प्रोग्राम प्रति दिन बदलता था। वह जिस मंदिर में नाचती थी वहाँ बहुत ही भीड़ होती थी।

पुरुष नटों में उस समय प्रतिष्ठा थी 'छोटे रामाधीन' की। 'बड़े रामाधीन' तो बहुत वर्ष पहले ही स्वर्गवासी हो गये थे।

एक बार हमारे महाराज महेश्वरबख्शसिंह (डुमरावँ-नरेश) अयोध्या में गये थे। बहुत दिनों तक वहाँ निवास भी किया था। वहाँ उनके बनाये अपने बगीचे, कोठी और फाटक हैं जो दर्शनीय हैं। उन्होंने सुना कि यहाँ 'रामाधीन' बड़े प्रसिद्ध नर्त्तक हैं। दूत भेजकर उनको बुलाया और अपनी इच्छा प्रकट की।

रामाधीन ने कहा—"महाराज, मैं तो अब कई वर्षों से घूँघरू उतार चुका हूँ और वृद्धता के कारण अत्यन्त निर्बल हो गया हूँ। इससे श्रीमान् की आज्ञा का पालन करने में असमर्थ हो गया हूँ।"

महाराज ने कहा—"हम आपके अतिथि होकर अयोध्या में आये हैं। अतिथि का सत्कार अवश्य कर्त्तव्य है। मेरे आग्रह को पूरा कीजिये।"

तब रामाधीन चुप हो गये। सायंकाल अपने समाजियों के साथ उपस्थित हुए। कमर में जामा कसकर पैरों में घूँघरू बाँधकर जब नाचने के लिये खड़े हुए तब जान पड़ा कि एक षोडशवर्षीय नवयुवक खड़ा है। बड़े परिश्रम से नाचा-गाया। महाराज ने प्रसन्न होकर दो सौ रुपये पारितोषिक दिये।

हम दोनों साथी दिन में पाठशाला में उपस्थित होकर पढ़ते थे और रात को दो बजे तक मन्दिरों में घूम-घूमकर नाच देखते थे! इस प्रकार तेरहों दिन (तृतीया से पूर्णिमा तक) बीते। श्रीअयोध्या की वह अनिर्वचनीय शोभा आज तक मेरे हृदय तथा नेत्रों में विराजमान है।

जिस समय मैं अयोध्याजी में पढ़ रहा था, उस समय वहाँ अनेक पाठशालाएँ थीं जिनमें सैकड़ों-हजारों छात्र अध्ययन करते थे। दान-शील धनियों की उदारता से छात्रों को अन्नवस्त्र का कष्ट नहीं होता था।

एक का नाम था 'कविराज-पाठशाला'। इसके अध्यक्ष थे 'लछि-राम कवि'। ये व्रजभाषा के बहुत बड़े कवि थे। ये डुमरावँ, दरभंगा, गिद्धौर, सूर्यपुरा आदि बिहार की रियासतों से प्रतिष्ठा के साथ प्रचुर बिदाई पा चुके थे। इनके बनाये 'रावणेश्वर-कल्पतरु' (गिद्धौर-नरेश-गुणगान), 'लक्ष्मीश्वर-विलास' (मिथिलेश-गुण-गान) आदि अनेक ग्रंथ छप चुके हैं। इनकी कविताओं में नवीन भाव रहा करते थे। उदाहरण देखिये—

प्यारी परभात अंग अंग अँगिरात अति
आलस-बलित चली उतरि अटारी तें।

कवि 'लछिराम' कल कंचुकी में बंक लट
बँध गई रैन ऐन सम गुन टारी तें।
करन दुहूँ सो हँसि बाहिरे करन लागी,
छैछ लटकीलो छक्यो छटकि छटारी तें।
जादूगरी खेल के जलूस हित मानों कढ़े
कुंडलित नाग नट-मदन-पिटारी तें ॥१॥
फाग अनुराग में कुमारी कल कीरति की
मारी पिचकारी पाग पेच लटपट मैं।
रसिक बिहारी त्यों गुलाल की घटान घेरि
सराबोर सारी करी रंगनि झपट मैं।
अंचल के ओट राखि हाथनि को हारनि पै
राजै 'लछिराम' करी उपमा प्रगट मैं।
मज्जन गिरा मैं करि मानों मैन-बाला
मंत्र मोहन जपति ज्वालमाला की लपट मैं ॥२॥

'लछिराम' अयोध्याधिपति महाराज मानसिंह के राजकवि थे। महाराज संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् तथा कवि थे। उनकी रचित 'अविमुक्त पंचदशी' बहुत ही सुन्दर पुस्तिका है। व्रजभाषा के तो बहुत ही सरस कवि थे। उनके बनाये अनेक ग्रन्थ हैं। कविता का नमूना देखिये—

बाँचत न कोऊ अब वैसिये रहत खाम
जुवती सकल जान गई गति या की है।

झूठ लिखिबे की उन्हें उपजे न लाज कछू,
जाय कुबजा के बसे निलज तिया की है।
दूसरी अवधि आवन की राधिका के आगे,
बाँचे कौन नारि जौन पोढ़ छतिया की है।
ऐसही मुखाखर कहो सो कहो ऊधो अब,
उठ गई ब्रज तें बिसास पतिया की है ॥१॥
गुंजरन लागी भौंर भौंरै केलिकुंजन मैं,
कैलिया के मुख ते कुहूकन कढ़ै लगी।
द्विजदेव तैसे कछू गहब गुलाबन तैं,
चहकि चहूँघा चटकाहट बढ़ै लगी।
लागो सरसावन सुहावन मनोज रति,
बिरही सतावन की बतिया बढ़ै लगी।
होन लागी प्रीति-रीति बहुरि नई सी नव,
नेह उनई-सी मिति मोह सो मढ़ै लगी ॥२॥

गरमी की छुट्टी में संस्कृत-पाठशाला छोड़कर घर चला आया। किन्तु कई कारणों से फिर अयोध्या न जा सका। अब काशी में रहकर पढ़ने का विचार किया। डुमरावँ-राज्य से मेरे लिये काशी रहकर पढ़ने का खर्च मिलने लगा। क्वींस कालेज में नाम लिखाया। महामहोपाध्याय तात्या शास्त्रीजी (श्रीरामकृष्ण शास्त्री) मेरे गुरु हुए। प्रातःकाल कालेज जाता था और मध्याह्नोत्तर महामहोपाध्याय पंडित जयदेवमिश्रजी के डेरे पर जाकर पढ़ता था।

इसी अवसर में जगद्वन्द्य श्रीमद्वल्लभाचार्य के वंशधर काँकरौली-नरेश महाराज बालकृष्णलालजी 'गोपाल-मन्दिर' में आये। कवियों का भाग्य जगा। वसन्त-पंचमी के रोज कवि-समाज हुआ। मेरी भी जाने की इच्छा हुई। मैंने एक हिन्दी-कविता बनाई जिसमें महाराज की वसन्त से समता बताई। दो संस्कृत के भी पद्य रचे। मैं समाज में पहुँचा तो देखा कि सब लोग कविता सुना रहे हैं। फिर मैंने भी पद्य पढ़ना आरम्भ किया—

आनँद को स्वास तेरो त्रिविध समीर बहै,
हास तेरो सुखद पपीहा की अवाज है।
लाल मृदु पल्लव-से अधर सुहात तेरो,
कारे घन तेरो कच भ्रमर-समाज है।
सुमन सुगंध सम फैलो है तिहारो जस,
आमन की मंजरी सो तेरो सिर ताज है।
राजन के राज महाराज बालकृष्णलाल,
'विप्रचंद' कोकिल को तू ही रितुराज है ॥१॥

गच्छति सततं परिभिद्य वदत्यपि तत्र तवैव चरित्रम्।
स्वर्गगता च धुनाति सदा हृदयं बहुगोत्रभिदोति पवित्रम्॥
विप्रसुचन्द्र कवेः शुभमानसमद्य करोति विकृष्य सुमित्रम्।
राजति कीर्त्तिरहो तव भूप महीतल-मध्यगताति विचित्रम्॥

दोहा

बालकृष्णलालः प्रभुर्निपुणः सकलकलासु
कृष्णभक्ति निरतः सदा रन्तासत्कवितासु।

महाराज ने प्रसन्न होकर बनारसी चादर के साथ पन्द्रह रुपये मुझे पारितोषिक दिये।

दो वर्षों के बाद एक नई घटना हुई। मालवा-प्रान्त के प्रसिद्ध जैन-साधु श्रीमद्भट्टारक विजयराजेन्द्रसूरिजी ने एक 'प्राकृत-कोष' की रचना करने का विचार किया, जिसके मुख्य शब्द मागधी के हों, उसका अर्थ तथा व्याख्या संस्कृत में हो और उसमें जितने उदाहरण हों वे सभी जैन-ग्रन्थों के हों। तात्पर्य यह कि यह जैन-धर्म का एक महान् कोश हो। अकेले यह कार्य असाध्य था। इसलिये कुछ सहायक पंडितों को रखने की आवश्यकता जान पड़ी।

महात्माजी का एक शिष्य मारवाड़ी 'जड़ावचंद' महामहोपाध्याय श्रीशिवकुमार शास्त्रीजी तथा महामहोपाध्याय श्रीअयोध्यानाथजी के पास पहुँचा। उसने इन दोनों पंडितों से दस विद्वान् छात्रों को माँगा। शिवकुमार शास्त्रीजी ने अपने पाँचों छात्रों में मुझको भी चुन लिया। मैं गुरुवर जयदेवमिश्रजी के साथ शास्त्रीजी के पास विशेष आया-जाया करता था। इसलिये शास्त्रीजी मेरी विद्या-बुद्धि भली भाँति जानते थे।

चलने के समय मैंने शास्त्रीजी के परम पवित्र पदपद्मों पर अपना सिर भक्ति-भाव से झुका दिया। शास्त्रीजी ने मेरी पीठ पर अपने कोमल हाथों को रखकर 'सफलमनोरथो भव—शिवास्ते पन्थानः' कहकर आशीर्वाद दिया। फिर कहा—

गम्यतामर्थलाभाय क्षेमाय विजयाय च।
शत्रुपक्षविनाशाय पुनरागमनाय च॥

भक्ति-भरित कोमल मधुर, सुन्दर सुखद पवित्र।
नासत सब ही पाप को, राधाकृष्ण-चरित्र॥

चतुर्थ अध्याय

प्रवास

श्रीराधे कृष्णप्रिये श्रीवृषभानुसुते हि ।

मह्यमचलभक्तिं परां निजपदकमले देहि ॥

मारवाड़, मालवा, गुजरात आदि प्रान्तों में जैन-साधु तथा जैन-वैश्य बहुत हैं। जैन-साधुओं में भी अनेक भेद हैं—दिगम्बर, श्वेताम्बर, पीताम्बर, संवेगी, यति, ढुंढक आदि। श्रमद्भट्टारक विजयराजेन्द्र सूरिजी महाराज संवेगी थे। वे प्राकृत, मागधी, शौरसेनी आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। जैनधर्म-शास्त्र के तो आचार्य ही थे। वे प्रतिदिन व्यासासन पर बैठकर जैनधर्म का उपदेश देते थे। वे बालब्रह्मचारी थे। उनके मुख पर एक तेजोमयी आभा झलकती थी, जिससे महात्मा जान पड़ते थे। जिस समय मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ उस समय उनकी अवस्था लगभग अस्सी वर्ष की थी, तथापि उनके शरीर में तनिक भी आलस्य न था। यह बात १९५६ वि. सं. की है। उस समय उनका निवास 'जावरा' नगर में था।

'जावरा' नगर मालवा में है। यहाँ एक नवाब रहते थे, जिनका

उस समय शरीरांत हो गया था। उनके पुत्र बालक थे। नवाबी राज्य का शासन बालक नवाब के मामा करते थे। स्वर्गीय नवाब बड़े उदार-हृदय थे। धार्मिक संकीर्णता उनके हृदय में नहीं थी। उनके राज्य में जितने हिन्दू-मंदिर थे, सबके बनाने का आधा खर्चा नवाब की ओर से मिला था। सभी हिन्दू-मंदिरों में नवाब की ओर से प्रतिदिन नियम-पूर्वक भोग लगता था और दीप जलता था।

राज्य की वार्षिक आय तेरह लाख थी। शहर की रोशनी राज्य ही की ओर से होती थी और कृष्ण तथा शुक्ल दोनों पक्षों में एक समान होती थी। एक बार एक कर्मचारी ने जाकर नवाब साहब से कहा—"जहाँपनाह! शुक्ल पक्ष में रोशनी व्यर्थ ही होती है। अगर शुक्ल पक्ष में रोशनी बंद कर दी जाय तो साल में पाँच सौ रुपये की बचत होगी।"

सुनकर नवाब साहब ने हँसते-हँसते कहा—"क्या मैं पाँच सौ के लिये अपने घर का चिराग गुल कर दूँ? यह तो बददुआ है कि 'तेरे घर का चिराग गुल हो जाय'! ऐसा कभी न होगा।"

जैन-साधुओं का यह नियम है कि चौमासे में स्थान-त्याग नहीं करते—अर्थात् जिस नगर या बस्ती में आषाढ़ की पूर्णिमा होती है उसी स्थान में कार्त्तिक की पूर्णिमा भी व्यतीत करते हैं। साधु लोग शिष्यों के प्रार्थनानुसार पहले ही से निश्चित कर लेते हैं कि इस वर्ष में अमुक स्थान में चौमासा बितावेंगे। फिर उसी विचारानुसार वे आषाढ़ की पूर्णिमा से दो-एक रोज पहले ही उस स्थान पर पहुँच जाते हैं।

उक्त भट्टारकजी के पचास हजार शिष्य थे। इस कारण श्रावकों

के प्रार्थनानुसार वे पहले ही चौमासा बिताने का स्थान स्थिर कर लेते थे। जिस साल मैं उनकी सेवा में पहुँचा उस साल वे 'जावरा' ही में चौमासा बिता रहे थे।

हमलोग भाद्रपद में वहाँ पहुँचे। दस छात्रों के साथ एक पंडितजी भी सर्वरक्षक होकर गये—पंडित रघुवीर मिश्र काव्यतीर्थ। ये पीछे अत्यन्त वृद्ध होकर निज जन्मभूमि 'मसूढ़ी' ग्राम (जिला आरा) में निवास करते थे। ये संस्कृत के बहुत ही अच्छे कवि थे। हिन्दी में भी कविता करते थे। ये अपना उपनाम 'द्विरेफ' रखते थे। 'रघुवीर' में दो 'र' कार हैं और 'भ्रमर' में भी। 'गुंजत द्विरेफ बैठि घाट बड़हर के' इत्यादि। इन्होंने 'लक्ष्मीश्वरोपायन' नामक ग्रंथ रचकर तथा छपाकर स्वर्गीय दरभंगा-नरेश (महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह) को समर्पित किया था और प्रचुर पुरस्कार भी पाया था।

हमलोग काशी से चलकर, मथुरा और पुष्कर-क्षेत्र होते हुए, 'जावरा' पहुँच गये। सब लोग भट्टारकजी के सामने जाकर खड़े हुए। भट्टारकजी ने मुझे देखकर, हमलोगों को काशी से ले जानेवाले मारवाड़ी 'जड़ावचन्द' से, झिझक के साथ, पूछा—"तुम एक छोरो क्या ल्यायो!"

उसने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—"बापजी, शिवकुमार शास्त्रीजी के कहने सूँ ले आयो। उननें कह्यो है कि या छोरो बड़ो विद्वान् है। फिर यदि यह अच्छा न निकलेगा, तो इसका काम देखकर, एक महीने के बाद, रेल का खर्चा देकर, लौटा देंगे।"

सबको काम बाँटा गया। सब लोग अपना-अपना काम करने लगे। मैं अपना काम भी करता था और अवकाश पाकर प्राकृत-व्याकरण भी पढ़ता था। कुछ दिनों के बाद अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

एक महीना बीत जाने पर भट्टारकजी ने सबका कार्य देखा। मेरा कार्य बहुत ही सन्तोषदायक हुआ। इसलिये दूसरे ही महीने से मुझे पाँच रुपये अधिक मासिक देने की आज्ञा हुई। तीस रुपये मासिक नियत करके मैं काशी से भेजा गया। यहाँ दूसरे ही महीने से पैंतीस पाने लगा। कुछ लोगों का मासिक घटाया भी गया। दो-एक आदमी उदासीन होकर काशी लौट आये। कुछ लोग घटे हुए मासिक पर ही सन्तोष करके रहने लगे। कुछ लोगों की तो उन्नति या अवनति कुछ भी नहीं हुई।

'जावरा' की भाषा हमलोग अच्छी तरह नहीं समझ सकते थे। इसलिये कभी-कभी बड़ी गड़बड़ होती थी। मेरे साथी एक पंडित शुकदेवजी थे। वे नदी के एक घाट पर बैठकर मुँह धो रहे थे। उसी रास्ते एक अबला आई जिसके सिर पर—एक छोटा और एक बड़ा—पीतल के दो घड़े थे। बाईं काँख के नीचे पानी से भरा एक पीतल का घड़ा था। दाहिने हाथ में भी एक पीतल का घड़ा था। धन्य उस अबला का बल! जहाँ शुकदेवजी बैठे थे उसी रास्ते वह जाना चाहती थी। इसलिये उसने अपनी भाषा में कहा—गैला दो, अर्थात् रास्ता दो, हटो कि मैं चली जाऊँ। शुकदेवजी ने समझा, वह कहती है—घड़ा उतार दो। बस हाथ फैलाकर घड़ा उतारने लगे। उसने

क्रोध से 'गेला है, गेला है' (पागल है, पागल है) कहकर अनेक गालियाँ दीं। अन्त में बहुत-से लोगों ने समझा-बुझाकर शान्त किया।

वहाँ बाजार में लकड़ियाँ लेकर बहुत-सी ग्रामीण स्त्रियाँ बेचने के लिये आती हैं। एक लकड़ीवाली से मैंने पूछा, क्या दाम लोगी? उसने कहा, हात पैसे। वहाँ 'स' को 'ह' बोलते हैं; इसलिये उसका तात्पर्य था 'सात पैसे'। मैंने कहा, 'पाँच पैसे'। उसने कहा—ना, हात पैसे। मैंने समझा, कहती है, हात पैसे—अर्थात् हाथ पर पैसे लूँगी, नगद लूँगी, उधार नहीं दूँगी। मैंने कहा, अच्छा, चल मेरे घर पर पहुँचा दे, वह लकड़ी पहुँचाकर पैसे माँगने लगी। मैंने पाँच पैसे उसके हाथ में दिये। वह पैसे फेंककर बिगड़ खड़ी हुई और चिल्लाने लगी—हात पैसे, हात पैसे। मैंने उन्हीं पाँचों पैसों को अपने हाथ में लेकर कहा—ले हाथ पर पैसे। उसने हाथ फैलाया तो मैंने उसके हाथ में वे ही पाँच पैसे दिये। उसने क्रोध करके पैसे फेंक दिये, और लगी जोर-जोर से चिल्लाने—अवाच्य-कुवाच्य शब्द भी कहने, जिनका अर्थ जानने में मैं असमर्थ रहा। मैं जिस मकान में रहता था उसके मालिक बड़े सौम्य और बुद्धिमान् थे। सब मामला समझ गये। हँसकर बोले—पंडितजी, इसको सात पैसे दे दीजिये। मैंने वही किया। बुढ़िया लेकर चली गई।

खूब याद रखिये। वहाँ 'सकार' को 'हकार' कहते हैं। 'सरदी पड़ती है'—इसको कहते हैं—'हरदी बाजे है।' 'शाली (धान) को भात खायो'—इसको कहेंगे—'हाली को भात खायो।'

हमलोग जिस कार्यालय में काम करते थे उसमें दो श्रीमाली-ब्राह्मण

के लड़के रखे गये थे, जिनमें एक की अवस्था सत्रह और दूसरे की उन्नीस वर्ष थी। दोनों सहोदर भाई थे। बड़े का नाम 'मुन्नालाल' और छोटे का 'झुन्नालाल' था। दोनों मिलकर हमलोगों की सहायता करते थे—स्याही, कलम, दावात, कागज, पुस्तक देते—बैठने के लिये बिछावन बिछाते—प्यास लगने पर पानी पिलाते। बड़े का ब्याह हो चुका था। छोटे का ब्याह होने जा रहा था। छोटे ने दस दिन की छुट्टी भट्टारकजी से ली।

दो-तीन दिन के बाद झुन्ना को न देखकर मैंने मुन्ना से पूछा—क्यों मुन्ना, झुन्ना कहाँ है? उसने उत्तर दिया—म्हारासा! उसकी हगाई हो रही है। 'महाराज साहब' का संक्षिप्त शब्द 'म्हारासा' है।

मैंने अपने मन में समझा, उसे दस्त की बीमारी हो गई है। तबतक दो-तीन दिनों के बाद मुन्ना भी गायब हो गया। फिर जब मुन्ना आया, मैंने पूछा, इतने दिनों तक कहाँ थे? उसने उत्तर दिया—म्हारासा, झुन्ना की हगाई थी, 'जान' गया था, मैं भी उसके साथ गया था।

मैंने अपने मन में सोचा—झुन्ना को हैजा हुआ और वह मर गया। मैंने सान्त्वना देते हुए कहा—अफसोस मत करो, संसार की यही लीला है। उसने कहा—या में अफसोस काई, बड़ी खुसी री बात है। सुनकर मैं अवाक् हो गया। कई प्रकार की विचित्र कल्पनाएँ मन में होने लगीं।

चार दिनों के बाद झुन्ना आया—पैरों में मेंहदी, कमर में पीली

धोती, लाल चपकन, लाल पगड़ी आदि से सजा हुआ। हँसता हुआ आकर हमलोगों को चरण-स्पर्श-पूवक प्रणाम किया। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। मैंने अपने समीपस्थ पंडित श्रीविष्णुशास्त्रीजी से सब हाल कहा। वे वहीं के रहनेवाले थे और उसी कार्यालय में हमी लोगों के समान कार्य करते थे। उन्होंने कहा—"झुन्नालाल की हगाई (सगाई शादी) थी। उसमें 'जान' गया था—बारात गई थी। दुलहा 'थान' (सवारी) पर चढ़कर जाता है।"

एक बरस वहाँ कार्य करके मैं घर आया। एक महीने के बाद फिर भट्टारकजी की सेवा में 'रतलाम' (मध्यभारत पहुँचा। कारण यह कि दूसरे वर्ष भट्टारकजी ने 'रतलाम' में चौमासा बिताने का निश्चय किया था। वे एक वर्ष किसी एक स्थान में कोश-कार्यालय स्थापित कर पूरा एक वर्ष वहीं निवास करते थे। साल-भर का सब खर्च उसी स्थान के शिष्यगण आपस में चन्दा करके देते थे।

कृपा करके भट्टारकजी ने इस साल मेरा वेतन चालीस रुपये मासिक कर दिया। वे मुझे पुत्रवत् समझते थे। उनका स्नेह यहाँ तक बढ़ गया कि वे मुझे अपना शिष्य बनाकर अपनी गद्दी देने का विचार करने लगे। दो-एक बार उन्होंने मुझसे एकान्त में इस विषय का प्रस्ताव भी किया। किन्तु मेरा अपने परिवार में इतना प्रगाढ़ स्नेह था कि मैंने नम्रता-पूर्वक अस्वीकार कर दिया। यदि मैं परिवार को त्यागकर उनका शिष्यत्व स्वीकार करता तो पिताजी को दो सहस्र और मेरी पत्नी को चार सहस्र रुपये भरण-पोषण के लिये मिल जाते।

मैं भी एक आचार्य की परम प्रतिष्ठित पदवी पर आरूढ हो जाता। किन्तु यह न हो सका। भावी प्रबल है। जो हो, मैं इतना तो अवश्य कहूँगा कि भट्टारकजी सचमुच एक ऋषि थे। उनका पवित्र चरित्र अनुकरणीय था।

इसी बीच में सर्वतंत्र-स्वतत्र, निखिलशास्त्रनिष्णात, परम वाग्मी, महात्मा 'बालराम स्वामीजी' उदासीन, चालीस शिष्यों के साथ, 'रतलाम' में आकर, नगर के बाहर एक जलाशय पर, उतर गये। आपने समस्त नगर में एक विज्ञापन बँटवा दिया कि चारों वेद, षट् शास्त्र, अष्टादश पुराण आदि में जिसको शास्त्रार्थ करने की इच्छा हो वह मेरे पास आकर शास्त्रार्थ करे।

यह विज्ञापन भट्टारकजी के पास भी पहुँचा। उन्होंने हमलोगों को आज्ञा दी कि तुमलोग जाकर उनकी विद्वत्ता की थाह लगाओ। हमलोग उसी जलाशय पर सायंकाल में पहुँचे जहाँ स्वामीजी एक ऊँची चौकी पर गद्दी-मसनद लगाकर धर्मशास्त्र-विषयक व्याख्यान दे रहे थे। हमलोगों ने समीप जाकर भक्ति-भाव-पूर्वक, उनका चरण स्पर्श कर, प्रणाम किया।

वे हमलोगों की वेश-भूषा देखते ही समझ गये कि ये लोग काशी के रहनेवाले हैं। हमलोगों के लिये शिष्य-द्वारा बहुमूल्य कालीन बिछवाकर बैठने का आदेश दिया। हमारे बैठ जाने के बाद सब श्रोताओं को सम्बोधन करके कहा—आपलोग थोड़ी देर धैर्य धारण करें, मैं अपने काशीस्थ आगत विद्वानों का व्याख्यान-द्वारा सत्कार करना चाहता हूँ।

फिर क्या था, उन्होंने संस्कृत में व्याख्यान देना प्रारम्भ कर दिया। वाह, जान पड़ता था कि अत्युच्च हिमालय-शिखर से अविच्छिन्न गंगा-प्रवाह प्रवाहित हो रहा है। उन्होंने वेदों, शास्त्रों और पुराणों की एकता सिद्ध करके बड़ी ही स्वच्छता के साथ ब्रह्म का निरूपण किया।

उनकी अपार विद्या देखकर हमलोगों का सिर भक्ति से झुक गया। अब हमलोग प्रतिदिन उनका व्याख्यान सुनने के लिये जाने लगे। सुनकर बड़ा ही आनन्द प्राप्त होता था।

एक दिन भट्टारकजी, स्वामीजी की विद्या के विषय में, पूछने लगे। हमलोगों ने कहा - स्वामीजी साक्षात् शंकराचार्य के अवतार हैं; ऐसा विद्वान् हमलोगों ने कभी नहीं देखा।

स्वामीजी क्वीन्स कालेज के षड्दर्शनाध्यापक महामहोपाध्याय पंडित राममिश्र शास्त्रीजी के शिष्य थे। उन्होंने काशी में बहुत दिनों तक निवास करके समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया था। उनकी विद्या अपार थी। 'उदासीन' (नानक-पंथी) होने पर भी वैदिक धर्म के ही आचार्य थे। वेदों पर उनकी बड़ी श्रद्धा थी। पक्के सनातन-धर्मी थे। वे अपनेको शंकराचार्य का अनुयायी समझते थे। मैंने उनके विषय में कुछ हिन्दी तथा कुछ संस्कृत के पद्य बनाये। सुनकर स्वामीजी प्रसन्न हुए। एक नागपुरी चादर के साथ दस रुपये नगद पारितोषिक दिये। मैं लेना नहीं चाहता था, तब स्वामीजी ने कहा — महन्त लोग एक प्रकार के राजा हैं; उनसे दक्षिणा लेना ब्राह्मणों का धर्म है। मैंने सिर झुकाकर आशीर्वाद-स्वरूप पारितोषिक ले लिया।

स्वामीजी ने सत्रह दिनों तक व्याख्यान देकर प्रस्थान किया। नगर-निवासियों ने अच्छा सत्कार किया।

यह वर्ष भी बीत चला। भट्टारकजी की दो वर्ष सेवा कर मैं घर लौट आया।

हमारा समाज पुरानी रूढ़ियों का दास है। बहुत-से लोग निन्दा करने लगे कि तुम जैनों का ग्रन्थ लिखते हो—वेदों की निन्दा करते हो उनके द्रव्य से अपना पालन करते हो—क्या तुम्हें दूसरी नौकरी नहीं मिलती जो यह निन्दित कार्य करते हो।

मैंने समझा, "लोकापवादो बलवान्"। फिर भट्टारकजी की सेवा में जाने का विचार छोड़ दिया।

इसी अवसर में मेरे हिन्दी-साहित्य के गुरु पं० राधावल्लभ जोयसीजी ने जयपुर और अपनी जन्मभूमि 'बगरू' जाने का विचार किया। मैं और रामजन्म मिश्रजी उनके अनुचर हुए। पहले हमलोग अयोध्या पहुँचे। उस समय वहाँ अयोध्या-राज्य के सिंहासन पर आनरेब्ल महा-महोपाध्याय महाराज सर प्रतापनारायणसिंह के० सी० आइ० ई० विराजमान थे। आप बड़े ही दयालु, नम्र, मिलनसार, दानशील, प्रजा-प्रिय, धार्मिक, साहित्यानुरागी, विद्वान् और कीर्त्तिप्रिय थे। वहाँ हमलोग महाराज के दरबार में उपस्थित हुए। सत्रह दिनों के बाद तीनों की बिदाई हुई। पं० राधावल्लभजी को एक मलमल का थान और पचास रुपये नगद। यही रामजन्म मिश्रजी को भी। मुझे एक मलमल के थान के साथ पचीस रुपये नगद बिदाई में मिले।

पंडितजी को भोजपुराधीश्वर का सभासद समझकर इतनी प्रतिष्ठा हुई— मेरी एक विद्वान् समझकर और रामजन्म मिश्रजी को अपना नातेदार समझकर प्रतिष्ठा हुई।

महाराज के नाना महाराज मानसिंह का डुमरावँ में, भोजपुर के महाराज के पुरोहित पं० राधावल्लभ मिश्रजी (बड़का बबुआ) की फूआ के साथ, विवाह हुआ था। उन्हीं के भतीजा रामजन्म मिश्रजी हैं।

भोजपुर-प्रान्त के बहुत-से शाकद्वीपीय ब्राह्मण 'बड़का बबुआ' का भाई या भतीजा अपनेको बताकर, अयोध्याधिपति महाराज को धोखा देकर, बिदाई लेते थे !

महाराज ने मुझसे कई बार पूछा—आपसे और मुझसे कोई जातीय सम्बन्ध है ?

मैंने कहा—नहीं।

मैं चाहता था कि मेरी बिदाई विद्वान् समझकर हो, न कि स्वजातीय समझकर। यद्यपि महाराज के साथ मेरा साक्षात् सम्बन्ध नहीं था, तथापि परम्परया सम्बन्ध तो अवश्य ही था।

महाराज के नाना महाराज मानसिंह तीन भाई थे– बड़े राजा रामाधीनसिंह, मझले राजा रघुवरदयालुसिंह, छोटे महाराज मानसिंह। राजा रामाधीनसिंह के दो पुत्र थे– राजा काशीनाथसिंह और राजा शंकरनाथसिंह। काशीनाथसिंहजी की कन्या का शुभ विवाह मेरे मझले साले मुकुन्ददत्त मिश्र के साथ हुआ था। बस, यही सम्बन्ध है। किन्तु महाराज के कई बार पूछने पर भी मैंने इस सम्बन्ध को छिपा रखा।

पाठकों को सन्देह होगा कि बड़े और मझले के रहते हुए भी छोटे भाई राज्याधिकारी कैसे हो गये। इसकी कहानी बड़ी मनोरंजक है।

महाराज दर्शनसिंहजी के तीन पुत्र थे--रामाधीनसिंह रघुवरदयालु सिंह, और मानसिंह। जब महाराज का स्वर्गवास होने लगा, तब बड़े पुत्र ने जाकर प्रणाम किया और कहा, कुछ दीजिये। महाराज ने कहा, तुम राज्य ले लो। फिर मझले पुत्र ने वैसा ही किया। तब महाराज ने कहा, तुम खजाना ले लो—यह खजाने की कुंजी है।

अन्त में जब छोटे पुत्र मानसिंह ने जाकर प्रणाम किया और कुछ याचना की, तब महाराज ने मुँह फेरकर करवट बदल दी। तब मानसिंह ने दूसरी तरफ खड़े होकर हाथ जोड़कर फिर प्रार्थना की। महाराज ने कहा—"बेटा, तुम बहुत देर से आये। राज्य और खजाना तो मैंने दे दिये। अब मेरे पास कुछ नहीं है। अच्छा, यह मेरी तलवार ले लो, जो इस समय दीवार पर लटक रही है। ईश्वर तुम्हारा सहायक हो। तुम इसी तलवार के बल पर महाराजा बनो।"

मानसिंह ने बड़े आनंद के साथ वह तलवार ले ली और बार-बार पूज्य पिताजी के चरणों में भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया।

दूसरे ही दिन महाराज का स्वर्गवास हो गया। बड़े पुत्र राजा रामाधीनसिंह ने दाहक्रिया की और ब्रह्मचारी होकर दस दिनों के लिये एकान्तवासी हुए।

मानसिंह ने सोचा—पिताजी का आशीर्वाद व्यर्थ क्यों हो? रात को उठे और सेनापति से जा मिले। उससे पूछा—यदि मैं राजा हो

जाऊँ तो कैसा ? सेनापति ने कहा, हम सब प्रकार आज्ञा-पालन करने के लिये तैयार हैं। मानसिंह ने कहा, सेना के साथ तैयार होकर मेरे साथ चलिये।

सेनापति ससैन्य शीघ्र आ पहुँचा। मानसिंह वही नंगी तलवार लेकर बड़े भाई के पास पहुँचे। बड़े भाई से धमकाकर इकरारनामा लिखवा लिया कि राज्य से मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। फिर मझले भाई के पास गये और उनको भी धमकाकर खजाने की कुंजी छीन ली।

भोर होते ही मानसिंह ने प्रजा को बुलाकर, उनके सामने ही जयध्वनि के साथ, राजसिंहासन पर आरोहण किया। उसी दिन से महाराजा की उपाधि धारण की। कुछ वर्षों के बाद गवर्नमेंट से आपको अनेक प्रतिष्ठित उपाधियाँ मिलीं।

महाराज ने बड़े भाई को नौ हजार रुपये वार्षिक नियत किया और शाहगंज (पलिया) का किला रहने के लिये दिया। मझले के लिये पाँच हजार रुपये वार्षिक नियत किया और धनगाईं का किला रहने के लिये दिया। इसके सिवा उन दोनों को खास अपनी जमीन्दारी भी कुछ अलग थी।

महाराज को पुत्र नहीं था। इसलिये महाराज ने अपने दौहित्र (नाती) श्रीप्रतापनारायणसिंह को राज्याधिकारी मनोनीत किया और प्रमाण-पत्र भी लिख दिया।

महाराज के स्वर्गवासी होने के बाद वही नाती श्रीमान् प्रतापनारायणसिंहजी राज्याधिकारी हुए। वे भी काल पाकर पुत्रहीन मरे और

अपनी छोटी महारानी जगदम्बिका देवी को दत्तक लेने का अधिकार दे गये। किन्तु यह भी नियम बना गये कि वह बालक महाराज मान-सिंह ही का गोत्रज हो।

छोटी महारानी ने दत्तक लिया और उसका नाम—पति-पत्नी दोनों का नाम मिलाकर—जगदम्बिकाप्रतापसिंह रखा। आजकल वे ही महाराज जगदम्बिकाप्रतापसिंहजी अयोध्या के राजसिंहासन पर विराजमान हैं।

महाराज से बिदा होकर हमलोग लखनऊ गये। वहाँ बड़ा मक-बरा, छोटा मकबरा, कैसरबाग आदि दर्शनीय स्थानों को देखकर जयपुर पहुँचे। 'नाटानियों का रास्ता' नामक मुहल्ले में पंडित रामनारायणजी के घर उतरे। दो-चार रोज के बाद 'वल्लभ' कविजी अपनी जन्मभूमि 'बगरू' (महॅलाँ) में अपने परिवार से मिलने के चले गये। साथ में रामजन्म मिश्रजी भी गये। मैं जयपुर ही में, अच्छी तरह नगर देखने तथा जीविका ढूँढ़ने के लिये, ठहर गया।

कविजी के प्राचीन पुरुष इसी 'बगरू' के रहनेवाले थे; इसलिये 'बगड़हट्ट' कहलाते थे। पुष्कररामजी यहीं से जाकर डुमराँव राजधानी में बसे थे। कविजी ने एक कविता रची थी जिससे उनका पूरा परि-चय मिल जाता है—

भरद्वाजऋषि के सुगोत्र विषे, आदि गौड़,
वेद यजु, शाखा मान्ध्यन्दिनि शुचि खानि ये।
यज्ञउपवीत मध्य राजत प्रवर तीन,
सत है सुपथ, देस देस ही सुमानिये।

शुभ कुलदेवी पर्णवासिनी विचित्रा, चैत्र
आश्विन की पूर्णिमा में पूजन प्रमानिये।
शासन बगड़हट्ट, पदवी है जोयसी की,
परिचय हमारो आप याही विधि जानिये॥

जयपुर बड़ा ही सुन्दर शहर है। उस समय भारतवर्ष में ऐसा सुन्दर शहर दूसरा नहीं था। सवाई जयसिंहजी ने कई करोड़ रुपये खर्च करके इस नगर को बसाया था। हवामहल—जिसमें सात सौ खिड़कियाँ हैं, ईसरलाट (जो दो ताड़ ऊँचा है) आदि भवनों को देखकर आश्चर्य होता है। नगर के बाहर 'रामनिवास' बाग है जिसके बीच में संगमरमर की बनी एक बहुत बड़ी तथा बहुत सुन्दर कोठी है। यहीं अजायबघर और चिड़ियाखाना भी है। यह बाग भी राजपूताना का एक मुकुट-मणि है। यह सवाई रामसिंह की कीर्त्ति है।

पहले इस नगर की सड़क कच्ची थी। रामसिंहजी ने इसे पक्की करा दी। तात्पर्य यह कि इस नगर को बसाया जयसिंह ने और सजाया रामसिंह ने। यहाँ नगर के चारों ओर बहुत ऊँची तथा चौड़ी पक्की दीवार है। सात दरवाजे हैं—चाँदपौल सूरजपौल, गनगौरीपौल आमेरपौल, घाटपौल, गलतापौल और साँगानेर। चौदह खिड़कियाँ हैं। रात को नौ बजे के बाद सभी दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द कर दी जाती हैं। सभी मकान एक कतार में और एक ही रंग-रूप के हैं, जिससे अपना मकान पहचानने में भी बड़ी दिक्कत होती है। मैं तो

कई बार दूसरे के मकान में घुस रहा था, किन्तु मकान-मालिक ने नम्रतापूर्वक हँसकर मेरा मकान बता दिया।

यहाँ एक कवि थे, जिनका नाम हरिवल्लभ भट्ट था। वे अपना नाम 'श्रीमल्लहरिवल्लभ' कहा करते थे। कई प्रकार के पदच्छेद किया करते थे—श्रीमत्-लहरिवल्लभ इत्यादि। ये संस्कृत के बहुत ही अच्छे कवि थे। जयनगर-पंचरंग, लोचनोल्लास, केशप्रसाधन, कान्ता-वक्षोजशतोक्ति आदि अनेक ग्रन्थ इनके रचे थे।

इनके सौतेले भाई कृष्णराम भट्ट थे जो संस्कृत के अद्वितीय कवि थे। ये राजकीय वैद्य थे और राजकुमार-कालेज के संस्कृत-विभाग में वैद्यक पढ़ाते थे। जब मैं जयपुर गया था तब उसके कई वर्ष पहले ही स्वर्गवासी हो चुके थे। उस समय इनके पुत्र गंगाधर भट्ट थे। मैंने दोनों से परिचय किया।

कृष्णरामजी के बनाये जयपुर-विलास, मुक्तकमुक्तावली, सारशतक, पलांडुराजशतक आदि अनेक अद्वितीय ग्रन्थ हैं। जयपुर के वर्णन में ये लिखते हैं—

[१] जयपुरं पुरहूतपुरोपमं सुनयनानयनानयनागरम्।

[२] के बलं दधति यत्र नो भटाः। केवलं प्रकृतितत्परोनृपः।
केऽवलम्बितमुदो न नागराः। केव लंघयति योषिदार्जवम्॥

[३] सद्वृन्दावनलालसो धृतमहानन्दादरः सोद्धवः।
युद्धेषु प्रकटीकृताजुर्नयशाः सत्यानुरक्ताशयः॥

अक्रूरोक्तिरतोऽनिरुद्धविभवो वल्गद्बलप्रोन्नतिः ।
श्रीमानेष विभाति माधव इव श्रीमाधवःक्ष्माधवः ॥

इसमें श्रीकृष्ण और महाराज माधवसिंह दोनों का वर्णन है।

[४] न जानीमः कस्मात्कमलवनवैरी हिमकरः
कवेः कस्याप्येतद्वचनमतिसन्दिग्धमनसः ।
नकैरत्रज्ञातः कथय कविताविद्भिरनयोः
प्रियावक्त्रौपम्य द्रविणकलहो भूमिवलये ॥

[५] लड्डूकैर्द्विजकुलमद्यभोजयित्वा प्रत्येकं तदनुसुवर्णमर्पयित्वा ।
वीटीं यन्नृप न ददासि तत्वयोग्यं, विक्रीते करिणि किमंकुशेविवादः ॥

[६] परमपवित्राचरितं कलितापहतिव्रतोल्लासम् ।
अनुमोदित सद्ग्रन्थम् सज्जनमिव दुर्जनं वन्दे ॥

इसमें सज्जन, दुर्जन दोनों के वर्णन हैं।

मैं समझता हूँ, श्लोकों का अर्थ समझने में हिन्दी-पाठकों को कठिनता होगी। इसलिये नम्बरवार अर्थ लिख देता हूँ जिससे पाठकों को आनन्द मिलेगा—

[१] जयपुर स्वर्ग के समान है। वहाँ सुन्दरी स्त्रियों के नेत्रों को देखकर रसिक जन अपनी मर्यादा छोड़ देते हैं। (सुनयना—नयन - अनयनागरं)

[२] जयपुर में कौन ऐसा वीर है जो बल को धारण नहीं करता। राजा केवल प्रजा की भलाई में ही तत्पर रहते हैं। वहाँ कौन नगर-निवासी आनन्द को धारण नही करता? वहाँ कौन स्त्री अपने

शील को त्याग करती है ? (के-बलं। केवलं। केऽवलम्बित। का-इव-लंघयति)

[३] श्रीकृष्ण उत्तम वृन्दावन में रहने की इच्छा रखते हैं। नन्दजी का बहुत आदर करते हैं। उद्धवजी के साथ रहते हैं। युद्ध में अर्जुन के यश को प्रकट कर दिया। सत्यभामा में प्रेम रखते हैं। अक्रूर की बात मानते हैं। अनिरुद्ध उनके विभव अर्थात् सन्तानरूपी धन हैं। उनके भाई बलदेव का बल बढ़ रहा है। ऐसे श्रीकृष्ण के समान महाराज माधवसिंह हैं।

राजा माधवसिंह (सतां-वृन्दस्य-अवने-लालसा-यस्य सः)—सज्जनों के समूह की रक्षा करने में अभिलाषा है जिसकी। (धृतः-महति-आनन्दे-आदरः येन सः) बड़े आनन्दों में आदर रखनेवाले अर्थात् आनन्द के बड़े-बड़े कार्य करते हैं। (उद्धवेन-उत्सवेन-सह वर्त्तते इति सोद्धवः) उत्सव के साथ रहनेवाले, जिनके घर में अनेक प्रकार के उत्सव—आनन्द-समारोह—होते हैं। (युद्धेषु-प्रकटीकृतं-अर्जुन धवलं-यशः-येन-सः) जिसने युद्ध में अपना स्वच्छ यश फैलाया। (सत्ये-अनुरक्तः-आशयो-यस्य सः) जिनका विचार सत्य से भरा है। (अक्रूरायां-उक्तौ रतः) मधुर बोलनेवाले। (अनिरुद्धः-प्रसरितः-विभवः-यस्य सः) जिसकी सम्पत्ति चारों ओर फैली रहती है। (वल्गद्बलेन = प्रोन्नतिः-प्रकृष्टा-उन्नतिः यस्य सः) बढ़े हुए बल के कारण जिसकी उन्नति हुई है। ऐसे भूपति माधवसिंह श्रीकृष्ण के समान शोभित हैं।

[४] 'चन्द्रमा कमल-समूह का शत्रु क्यों है ?'—ऐसा वचन

वही कहता है जिसके मन में सन्देह है। चन्द्रमा और कमल दोनों होड़ करके रमणी के मुख की उपमा होना चाहते हैं। बस, यही उन दोनों का झगड़ा है।

[५] हे राजन्, तुमने ब्राह्मणों को लड्डू खिलाये, अशर्फियाँ दक्षिणा दीं; तब पान नहीं देते हो—यह अनुचित है। जब हाथी बिक गया तब अंकुश के लिये झगड़ा क्या है? (अंकुश तो हाथी के साथ ही बिक जाता है—जैसे घोड़े के साथ लगाम और गाय-बैलों के साथ पगहा।)

[६] (परम-पवित्र-आचरितम् = परम पवित्रं आचरितं यस्य सः) अत्यंत पवित्र है आचरण जिसका। (कलेः तापस्य-अपहतौ-नाशने-व्रतस्य-नियमस्य-उल्लासो यस्य) कलि का ताप नष्ट करने का जो नियम है उसमें उत्साह है जिसका—अर्थात् जो कलि का ताप नियम से नष्ट करते हैं। (अनुमोदितः-प्रशंसितः-सतां-सज्जनानां वन्धः ग्रन्थः येन सः) जिसने सज्जनों के ग्रंथ की प्रशंसा की है—ऐसे सज्जन को मैं प्रणाम करता हूँ।

(परं-अपवित्राचरितं-यस्य सः) जिसका आचरण बहुत ही अपवित्र है। (कलितः अपहति व्रते-उल्लासः येन सः) जो दूसरे की हानि नियम से (अर्थात् अवश्य ही) उत्साह के साथ करते हैं। (अनुमोदितः प्रसन्नतया स्वीकृतः सतां सज्जनानां वंधः दुःखवेष्टनं येन सः) जो सज्जनों को दुःख के बन्धन में डालना चाहते हैं—ऐसे दुर्जन को मैं प्रणाम करता हूँ।

जयपुर में सत्रह दिनों तक निवास करने के बाद 'चौमू' ग्राम के

अधीश्वर श्रीठाकुर गोविन्दसिंहजी के वन-विभाग के निरीक्षक पं० ब्रजवल्लभ मिश्रजी से परिचय हुआ। वे मुझको अपने साथ लेकर 'चौमू' चले गये।

जयपुर में मैंने पंडित रामनारायणजी की कृपा से सुखपूर्वक सत्रह दिन बिताये। वे दोनों (दम्पति) मुझे पुत्र के समान समझते थे और मैं उन दोनों (पति-पत्नी) को पिता-माता के समान समझता था। वे राजकुमार-कालेज में अध्यापक थे।

चौमू में पहुँचने पर मुझे तीन-चार 'ट्यूशन' (छात्र के घर पर जाकर पढ़ाने का काम) मिल गये—ब्रजवल्लभजी के घर, चौमू-राज्य के राजगुरु श्रीमान् महन्त गोविन्ददासजी के दरबार में और एक मारवाड़ी गौड़ ब्राह्मण पंडित हनूमान शर्मा के पास। तीनों मिलाकर पन्द्रह रुपये मिलते थे। महन्तजी के दरबार से पाँच रुपये के अतिरिक्त दोनों समय (दिन और रात में) भोजन के लिये विहारीजी का प्रसाद भी।

मुझे इन थोड़े-से रुपयों से सन्तोष न हुआ। तब महन्तजी से मैंने प्रार्थना की कि मैं आपके मन्दिर में कथा बाँचना चाहता हूँ। महन्तजी ने स्वीकार किया और मैंने 'ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण' का श्रीकृष्ण-जन्म खंड बाँचना प्रारम्भ किया। भीड़ खासी होती थी। एक महीने में कथा समाप्त हुई। समाप्ति के दिन महन्तजी ने पाँच रुपये पोथी पर चढ़ाये। और लोगों ने भी पूजा चढ़ाई। सब मिलकर चौरासी रुपये चढ़े। पर ये सब रुपये उसी राज्य के थे, जो तेरह आने मूल्य के थे।

मैं समय पाकर 'सामवत' आदि छोटी-छोटी रियासतों में भी ऊँट

पर चढ़कर घूम आया। वहाँ ऊँट की सवारी के सिवा दूसरी सवारी नहीं मिलती। बहली (बैलगाड़ी) भी मिलती है; पर उससे वह वालुकामय प्रदेश पार करने में बड़ा कष्ट होता है। बड़े-बड़े राजा-बाबुओं के पास बड़े अच्छे ऊँट रहते हैं। वहाँ नई दुलहिनों की बिदाई भी ऊँट ही पर होती है। वे घूँघट लटकाये ऊँट पर बैठकर चली जाती हैं।

यह देश स्वास्थ्य के लिये अच्छा है। जिधर देखिये, उधर बालू-ही-बालू। वृक्ष कम देख पड़ते हैं। बाजरा, मोट आदि अन्न बहुत उपजते हैं। मुगल-सम्राट् अकबर विजयी होकर जब मारवाड़ में पहुँचे तो कहा—'बाजरा री रोटी मोट्या री दार, देखी रे राजा थारी मारवार।' (थारी = तुम्हारी; री = की)

मारवाड़ में वालुकामय प्रदेश बहुत हैं। जल बहुत नीचे है। 'चौमू' के बाहर एक छोटा-सा जंगल था। जंगल के बीच एक श्रीकृष्ण जी का मंदिर था। वहाँ एक अंधे महन्त थे। एक पुजारी और एक दास—दोनों उनके साथ रहते थे। भोग-राग का प्रबन्ध ठाकुर श्रीगोविन्दसिंहजी की ओर से था। मैं प्रति दिन वहाँ जाकर स्नानादि नित्यकृत्य करता था। वहाँ कबूतर आदि पक्षी तो ऐसे निर्भय थे कि जब मैं मुँह धोता था तब लोटे पर बैठकर लोटे का जल पीने लगते थे। वहाँ कोई जीवहिंसा नहीं करता था। मारवाड़ में वैष्णव और जैन बहुत हैं। ये दोनों ही अहिंसा के पक्षपाती हैं।

वहाँ एक मित्र के घर भोजन करने के लिये गया तो देखा कि एक ओर पुरुषों की पाँति है और दूसरी ओर सामने ही स्त्रियों की पाँति है।

पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

[पृष्ठ ८३]

स्त्रियाँ परसनेवाले पुरुषों को पुकारकर कहती थीं - रावलजी, लाडू लाओ। देखकर मैं अवाक् हो गया।

वहाँ दो तरह के भोजन समाज में खिलाने के लिये बनते हैं—लड्डू, कचौरी, तरकारी; अथवा रोटी का चूरमा (जो घी-चीनी मिलाकर बनाया जाता है) और मोट की दाल। वहाँ ब्राह्मण लोग लड्डू ही से खाना शुरू करते हैं, मीठा बहुत खाते हैं, नमकीन चीज अन्त में थोड़ा खा लेते हैं।

मेरे साथ मेरे मित्र भी भोजन करने के लिये समीप ही बैठे। और लोग भी थे। सभी ने लड्डू ही से भोजन करना प्रारम्भ किया। मैंने कचौरी का एक छोटा-सा टुकड़ा तरकारी के साथ उठाया। सभी ने हँसकर पूछा—आप कहाँ रहते हैं? मित्र ने बताया कि ये भोजपुरी हैं। तब सभी ने हँसकर कहा, तभी तो पहले नमकीन उठाया!

छ महीने के बाद मैं घर लौट आया।

सुधा-सरिस मधु हरि-चरित, जो नहिं सुनते मूढ़।
निज पापन सों हनत हैं आतम को ते मूढ़॥

पंचम अध्याय

श्रीराधा राधाधवौ भववाधाशमनौ च।
सन्तनुतां मम मङ्गलं निखिलदुःखदमनौ च ॥

कलकत्ता-निवास

कलकत्ता के मारवाड़ी बड़े उद्योगी हैं। उन्होंने अपने अचूक अध्यवसाय से बड़ी उन्नति की है। वे लक्ष्मी के कृपा-पात्र हैं। उनके पास असंख्य सम्पत्ति है।

भावी प्रबल है। उनलोगों के चित्त में कुछ सरस्वती की भक्ति उत्पन्न हुई। फिर क्या था, लाखों रुपये इकट्ठे हो गये। उनका प्रत्यक्ष यश-स्वरूप 'श्रीविशुद्धानन्द-सरस्वती-विद्यालय' स्थापित हो गया।

इसमें दो विभाग खुले—संस्कृत-विभाग, अँग्रेजी-विभाग। प्रथम में तीर्थ तक और द्वितीय में मैट्रिक (इंट्रेंस) तक पढ़ाई प्रारम्भ हुई। दोनों विभागों के अध्यक्ष (प्रिंसिपल) नियत हुए—'चिलहरी' ग्राम (पो० मँझवारी, जिला शाहाबाद) के रहनेवाले पांडेय उमापतिदत्त शर्मा बी० ए०। अंग्रेजी-विभाग के हेडमास्टर हुए श्रीनारायणचन्द्र चटर्जी बी० ए०। संस्कृत-विभाग के प्रधानाध्यापक हुए श्रीयोगीश झा व्याकरणतीर्थ।

अब अंग्रेजी-विभाग में एक हेडपंडित की आवश्यकता हुई। समाचार-पत्रों में विज्ञापन प्रकाशित हुआ। मैंने एक आवेदन-पत्र, स्कूल के सेक्रेटरी श्रीरामदेव चोखानीजी के पास, भेज दिया। भाग्यवश मेरी नियुक्ति हो गई। वहाँ जाकर कार्य करने लगा।

उसी समय 'भारतमित्र' के सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पं० गोविन्दनारायण मिश्र, 'हिन्दी-बंगवासी'-सम्पादक बाबू हरेकृष्ण जौहर आदि हिन्दी-साहित्य-सेवी विद्वानों से मेरा परिचय हुआ।

वहाँ हिन्दी का प्रचार बड़े जोर-शोर से हो रहा था। मेरे चित्त में भी उत्साह का संचार हुआ। बाबू बालमुकुन्द गुप्तजी का शिष्य बनकर मैं हिन्दी लिखने लगा। यद्यपि मैं पहले भी हिन्दी लिखता था तथापि कोई शिक्षक न रहने के कारण परिष्कृत हिन्दी नहीं लिख सकता था। मैं लेख लिखता था और गुप्तजी उसे शुद्ध कर 'भारतमित्र' में प्रकाशित कर देते थे। मेरा उत्साह द्विगुणित होता गया।

इसी उत्साह के वशीभूत होकर मैंने संक्षिप्त 'दशकुमार चरित' लिखा। गुप्तजी ने उसे पुस्तकाकार में प्रकाशित करा दिया। पंडित-राज जगन्नाथकृत 'भामिनीविलास' काव्य का पद्यानुवाद भी किया। गुप्तजी ने उसको भी प्रकाशित करा दिया। मेरा उत्साह बहुत बढ़ गया।

दो ग्रंथ संस्कृत के भी मैंने रचे। एक का नाम 'स्तोत्र-कुसुमांजलि' है। इसमें वियोगिनी-छंद के ६७ श्लोक हैं, जिनमें श्रीरामचन्द्रजी

की स्तुति है। दूसरे का नाम 'पद्यपुष्पोपहार' है जिसमें अनेक छन्दों के २७ पद्य हैं—इसमें मेरे विद्यादाता पूर्वोक्त पंडित चंद्रमणि शर्माजी की स्तुति है। ये शर्माजी पांडेय उमापतिदत्त शर्मा को भी संस्कृत पढ़ा चुके थे, तथा उनके पितृव्य शाकद्वीप पांडेय के भी ये विद्यादाता गुरु थे। उक्त दोनों पुस्तकों को पांडेय उमापतिदत्त शर्माजी ने निज व्यय से प्रकाशित कराकर मेरा उत्साह शतगुण कर दिया।

मैंने 'मार्कण्डेय पुराण' का हिन्दी-अनुवाद श्रीबाबू बालमुकुन्दजी की आज्ञा से किया। गुप्तजी ने 'भारतमित्र' प्रेस में उसे प्रकाशित कराया और पचहत्तर रुपये मुझे पारितोषिक-स्वरूप दिये।

मैंने कुछ लोगों के मुँह से सुना कि यहाँ एक मारवाड़ी सज्जन हैं, जो संस्कृत बहुत अच्छी जानते हैं—काव्य और वेदान्त में उनकी अच्छी गति है। मैंने उनसे मिलने का विचार किया। एक संस्कृत-पद्य बनाकर साथ लेता गया। वहाँ जाकर मैंने निम्नलिखित पद्य सुनाया—

श्रीमद्वैश्यावतंसः पयउदसदसन्निर्णये राजहंसः।
लक्ष्मीलीलाविलासः समुचितसकलानंदलब्धप्रकाशः॥
वेदान्तज्ञानधीरः कविकुलकवितासत्क्रियासत्यवीरः।
वैरिव्रातस्य भल्लः समुदितविभवो राजतां रूढमल्लः'॥

सुनकर सेठजी बड़े प्रसन्न हुए। इक्यावन रुपये पारितोषिक दिये। फिर मुझसे कहा—कुछ माँगिये। मैंने कहा—मैंने 'राधा-माधव-विलास' नाम का एक काव्य बनाया है, जिसमें संस्कृत-दोहा-छन्दोबद्ध पाँच सौ पचीस पद्य हैं- उसको निज व्यय से प्रकाशित करा दीजिये—उसमें

मेरा चित्र (फोटो) भी प्रकाशित हो जिसका ब्लाक 'थैकर स्पिंक' कम्पनी में बने—टाइटल-पेज सुन्दर दुरंगा हो—पुस्तक के प्रत्येक पत्र में 'बार्डर' हो; इत्यादि।

सेठजी ने अपनी असीम उदारता से सब स्वीकार कर लिया। पुस्तक छापने के लिये बी० एल० प्रेस में भेज दी गई। पुस्तक छपकर तैयार हो गई। 'कवर' छपना बाकी रह गया। सब रुपये खतम हो गये—जो छपाने में खर्च के लिये मिले थे। मैं सेठजी की सेवा में पहुँचा और निम्नलिखित श्लोक उनके हाथ में दिया—

श्रीराधाधवचरितं प्रकाशितं ते।
चित्रं चैव विमलमत्युदारभावैः।
आवरणे किमुवत धार्यते विलम्बः।
विक्रीते करिणि किमंकुशे विवादः॥

तात्पर्य यह कि आपने उदारता के साथ 'राधामाधव-विलास' को और उत्तम चित्र को प्रकाशित कर दिया। अब कवर छपाने में क्यों देर करते हैं। जब हाथी बिक गया तब अंकुश के लिये क्या झगड़ा है!

सेठजी ने पूछा—क्या कवर अबतक नहीं छपा? मैंने कहा—नहीं। तब उन्होंने कहा, नीचे से मुनीम को बुलाइये। मैं मुनीम को बुलाकर ऊपर ले गया। सेठजी ने उससे पंद्रह रुपये देने के लिये कहा। उसने कहा—इस समय रुपये नहीं हैं। यह कहकर वह नीचे चला गया। मैं चुपचाप बैठा रहा।

सेठजी ने कहा—"लीजिये, यह अँगूठी। इसे १५) में बन्धक रख-

कर १२॥) का कागज खरीदिये और २॥) बँधाई-कटाई में खर्च कीजिये। कल जब मेरा मुनीम १५) लेकर आपके घर जायगा तब अँगूठी दीजियेगा—मैं इस अँगूठी के विना कभी पूजा नहीं करता।"

अँगूठी में लाल नग जड़ा था—बेशकीमत जान पड़ती थी। जब मैं अँगूठी लेकर कोठे से नीचे उतरा तब मुनीम ने मुझसे पूछा—क्यों पंडितजी, रुपये मिले? मैंने कहा—रुपये तो नहीं मिले; लेकिन यह अँगूठी सेठजी ने दी है—इसे बन्धक रखकर काम चलाऊँगा। मुनीम ने कहा—चलिये ऊपर, मैं रुपये लेकर आता हूँ। मैं फिर ऊपर सेठजी के पास पहुँचा। पीछे मुनीम भी रुपये लेकर पहुँचा। उसने सेठजी के सामने ही रुपये देकर अँगूठी माँगी। मैंने अँगूठी दे दी और रुपये ले लिये। सेठजी की त्यौरी चढ़ गई।

सेठजी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुनीम से कहा—"मेरे पिताजी मरने के समय मुझसे कह गये हैं कि सबको निकालना, पर मुनीम को नहीं। इसीलिये मैं तुमको नहीं निकालता। किन्तु याद रखो, यदि मैं किसी को कुछ देने के लिये कहूँगा और तुम उसी समय नहीं दोगे, तो मैं विष खाकर प्राण-त्याग कर दूँगा।"

सचमुच सेठजी बड़े उदार पुरुष थे। जिस साल उनकी पत्नी का देहान्त हुआ उसी साल उनके घर के सब उत्सव बंद किये गये। इसी बीच 'रक्षा-बंधन' आया। बहुत-से ब्राह्मण रक्षा-सूत्र लेकर उनके घर गये। मैं भी गया। सब चुप थे। किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उनको रक्षा दे। कुछ देर के बाद जब मैं चलने लगा तो उन्होंने

कहा—क्यों पंडितजी, विना रक्षा दिये ही चले जा रहे हैं ? मैंने कहा—इस साल सेठानीजी का स्वर्गवास हुआ है, तब रक्षा कैसे दी जा सकती है ? सेठजी ने कहा—कोई हानि नहीं, रक्षा दीजिये, इस वर्ष मैं जो पुण्य करूँगा सो सब उन्हीं को मिलेगा।

मैंने रक्षा देकर दो रुपये दक्षिणा पाई। मेरी देखादेखी सभी ब्राह्मणों ने रक्षा देकर यथोचित दक्षिणा पाई।

सच पूछिये तो वे मेरे बड़े अवलम्ब थे। जब रुपये की जरूरत पड़ती थी तब संकेत पाते ही बड़ी सहायता करते थे।

मारवाड़ियों पर भगवान् की कृपा है। इसलिये लक्ष्मीजी इनके घर सदा निवास करती हैं। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सभी दानी होते हैं। धर्म से ही इनका धन बढ़ता है

१९०३ ई० से लेकर १९०६ ई० तक मैं कलकत्ता में श्रीविशुद्धानन्द-सरस्वती-विद्यालय में हेडपंडित का कार्य करता रहा। उन्हीं दिनों मेरे पूज्य पिताजी ने एक पत्र मेरे पास भेजा— 'तुम्हारी माताजी गंगासागर और जगदीश-धाम (पुरी) की यात्रा करना चाहती हैं; तुम्हारी क्या राय है ?"

मैंने शीघ्र उत्तर दिया—"आप विना विलम्ब कलकत्ता चले आइये। यहाँ सब प्रबंध हो जायगा।"

मकर-संक्रान्ति के कुछ समय पहले श्रीपिताजी, माताजी के साथ, कलकत्ता चले आये। मुझे अपार हर्ष हुआ। मैंने पहले उक्त सेठ रूढ़मल्लजी गोयनका से निवेदन किया। उन्होंने पिताजी को अपनी गाड़ी

भेजकर अपने घर पर बुलाया और कुछ सम्भाषण के बाद उनके पवित्र चरणों पर बड़े भक्तिभाव से पंद्रह रुपये रख दिये। पिताजी आशीर्वाद देकर डेरे पर लौट आये।

मैं उचित समय पर स्कूल गया। कुछ सयाने लड़कों से पिताजी के आने का कारण बताया। उन लड़कों के सरदार थे बाबू रंगलालजी जाजोदिया, जो आज ईश्वर की दया से कलकत्ता के मारवाड़ी-समाज में एक सम्पन्न सेठ और प्रसिद्ध पुरुष हैं। उन्होंने कहा—आज हमलोग आपके पिताजी का दर्शन करने के लिये पाँच बजे सायंकाल आवेंगे, आप घर ही पर रहियेगा। पाँच बजे सब लड़के पहुँचे और पिताजी के चरणों पर पूजा रखना प्रारम्भ किया। उनका उत्साह देखकर मैं अवाक् हो गया। इतनी पूजा चढ़ी कि गंगासागर और जगदीश-(पुरी)-यात्रा भली भाँति हो गई। घर पहुँचने पर उन्हीं बचे हुए रुपयों से ब्राह्मण-भोजन भी हुआ। धन्य मारवाड़ी-समाज!

मैंने बाबू रंगलालजी जाजोदिया की पितामही (दादी) को वाल्मीकीय रामायण सुनाना प्रारम्भ किया। उन्होंने सात कांड के लिये सात सौ रुपये देने का संकल्प किया। मैं प्रतिदिन प्रात.काल कथा सुनाया करता था। जब अयोध्या-कांड का आधा हिस्सा (डेढ़ कांड) हो गया, तब अचानक उस पुण्यशीला वृद्धा का सायं समय देहान्त हो गया। जब मैं दूसरे दिन प्रातःकाल, प्रतिदिन के नियमानुसार, उनके घर पर पहुँचा तब वह दु:खद समाचार सुनकर बहुत ही हताश हो गया। श्राद्ध समाप्त होने के बाद मुझे एक सुवर्ण-बाहु-भूषण के साथ डेढ़ सौ रुपये मिले।
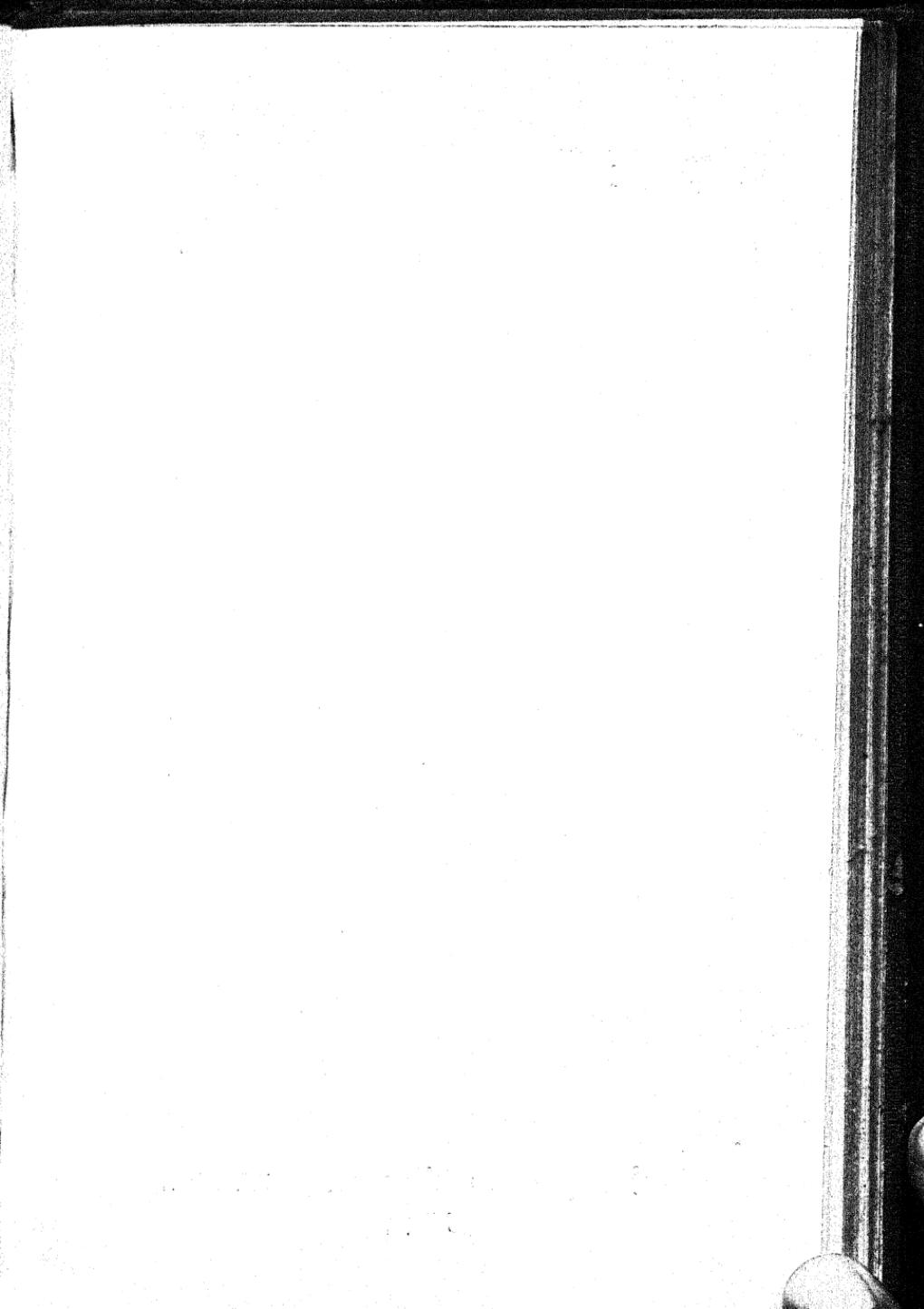
भूतपूर्व जयपुर-नरेश [स्वर्गीय महाराज माधवसिंहजी

[पृष्ठ ८६]

बाबू रंगलाल जाजोदियाजी से मुझे बहुत ही सहायता मिला करती थी, जिससे कलकत्ता का बड़ा खर्च बड़ी सुगमता से चला जाता था।

कलकत्ता में एक मारवाड़ी बड़े धनी, रसिक और खर्राच थे। उनका नाम था सेठ दुलीचंद। मैंने उनके विषय में पाँच हिन्दी-कविताएँ रचकर, प्रेस में छपाकर, फ्रेम और शीशे में मढ़वाकर, समर्पित किया। उन्होंने पचीस रुपये देकर उचित सम्मान किया।

मैं प्रायः शनिवार को थिएटर देखने के लिये सपत्नीक जाया करता था। कभी-कभी कलकत्ता के बाहर 'बेलगछिया' आदि दर्शनीय स्थानों को देखने के लिये सपत्नीक ही जाया करता था। कलकत्ता में मेरा शरीर प्रायः रोगी रहा करता था। इसलिये एक महीने की छुट्टी लेकर घर आया। किन्तु फिर वहाँ नहीं गया। गया मेरा त्यागपत्र !

मैं बाबू बालमुकुन्द गुप्तजी की असीम अनुकम्पा और जाजोदियाजी की दया कभी नहीं भूल सकता। १९२६ ई० में मैं अपनी पुत्री 'मदालसा' को कलकत्ता-अस्पताल में दिखलाने के लिये अपनी स्त्री के साथ गया। तब भी जाजोदियाजी के ही घर पर ठहरा। उन्होंने अपनी मोटर और घोड़ागाड़ी हमलोगों को टहलने के लिये दे दी जिससे हमलोगों को घूमने में बड़ी सुगमता हुई। मेरी कन्या के विवाह में भी उन्होंने अच्छी सहायता दी थी। आजकल वे कलकत्ता में अपने समाज के एक नामी सुधारक नेता हैं।

उक्त स्कूल की कृपा से जयपुर के महाराज श्रीमान् माधवसिंहजी सवाई के दर्शन पाने का तथा महीनों पंडित दीनदयालुजी के उत्तमोत्तम

व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। दो-तीन दिनों तक पंडित गणेशदत्तजी के भी व्याख्यान सुनने का अवसर प्राप्त हुआ।

मैं कलकत्ता में सपरिवार—अर्थात् स्त्री और एक पुत्री 'यमुना'—के साथ रहता था। यह मेरी तृतीय कन्या थी। इसके पहले दो कन्याएँ दो-दो बरस की होकर कालकवलित हो गई थीं। जब मैं डुमराँव में पहुँचा तब थोड़े दिनों के बाद यमुना पर शीतला का प्रकोप हुआ। एक सप्ताह के भीतर ही वह भी स्वर्गवासिनी हो गई। मेरे हृदय पर वज्राघात हुआ।

भगवान् की इच्छा से फिर १९६३ वि० सं० के आषाढ़-कृष्णपक्ष में पंचमी सोमवार को एक कन्या हुई जिसका नाम रखा गया 'मदालसा देवी'। पिताजी ने इस कन्या को गोद में लेकर आशीर्वाद दिया कि यह कन्या चिरंजीविनी और सौभाग्यवती होगी—सुखी घर में इसका विवाह होगा और इसी की संतान से तुम्हारा वंश चलेगा। उनका यह शुभाशीर्वाद अक्षरशः सत्य हुआ।

मैंने उसका शुभ विवाह भागलपुर-(महल्ला आदमपुर)-निवासी प्रसिद्ध वकील पंडित शीतलप्रसाद मिश्रजी के द्वितीय पुत्र चिरंजीवी श्रीभोलानाथ मिश्र बी० ए० के साथ बड़ी धूमधाम से कर दिया। जगदीश्वर की कृपा से आज मेरी कन्या को प्रथम पुत्र नवलकिशोर इसके बाद तीन कन्याएँ—जनकलली, श्यामसुन्दरी, मनोरमा—और फिर एक पुत्र नन्दकिशोर, ये पाँच बालक-बालिकाएँ क्रमशः उत्पन्न होकर वर्त्तमान हैं। मेरे समधी पंडित शीतलप्रसाद मिश्रजी बड़े

धनीमानी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। समाज में इनका बड़ा नाम था। ये चार भाई थे—पंडित गौरीदत्त मिश्र, शीतल मिश्र, वासुदेव मिश्र और संतलाल मिश्र। तीनों बड़े भाई वकील और छोटे भाई डाक्टर थे। चारों ने मिलकर प्रचुर धन-उपार्जन किया। शीतल मिश्रजी भगवत्भक्त थे, कविता भी करते थे—बड़े प्रेम से भगवान् की स्तुति बनाकर गाया करते थे—

रोना है तो रो रे मुसाफिर, तू मालिक के पास।
जब वह रोना सुनेगा तेरा, दया करेगा खास॥

षष्ठ अध्याय

पुरन्दरसहस्राणि चक्रवर्त्ति शतानि च।
निर्वापितानि कालेन प्रदीपा इव वायुना ॥

पितृ-वियोग

पूज्यपाद पिताजी बीमार हुए। जलोदर हो गया। डाक्टरों ने असाध्य बताया। मैं उनको लेकर काशी पहुँचा। वहाँ प्रह्लाद-घाट पर श्रीविश्वनाथ पंडाजी के मकान पर ठहरा। मेरे फुफेरे भाई भीमसेनमिश्र, पंडित रघुनाथ वैद्यजी से, वैद्यक पढ़ते थे और पंडाजी के उसी मकान में रहते थे। भाई साहब की राय हुई कि काशी के भारत-प्रसिद्ध वैद्य प्राणाचार्य श्रीत्र्यम्बक शास्त्रीजी बुलाये जायँ। रघुनाथजी भी शास्त्रीजी के शिष्य थे।

शास्त्रीजी आये। पिताजी की अवस्था देखकर मुझसे कहा—"शरीरे जर्जरीभूते रोगग्रस्ते कलेवरे; औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः। अब चिन्ता मत कीजिये। मोक्षदायिनी पुरी काशी में चले आये हैं। आप ज्येष्ठ पुत्र साथ में हैं ही। यदि इस अवस्था में शरीरान्त हो जाय तो बड़े आनन्द की बात है। रोग भी तो असाध्य

हो गया है। दस्त की दवा से अच्छे हो सकते थे; किन्तु उसी के साथ प्राणान्त हो जायगा तो अधोगति होगी। बस, एक ही दवा देता हूँ जिससे ज्ञान-पूर्वक मृत्यु हो।"

जब वे पालकी पर चढ़कर चलने लगे तो मैं साथ में लग गया। उन्होंने पूछा—"क्या कुछ पूछना चाहते हो? रोग असाध्य है। 'साक्षाद्यान्मरणं' होगा। यदि कहीं पानी बरस जाय तो चौबीस घंटे के भीतर ही काशीवास हो जायगा। सचेत रहना, मेरी दवा के प्रभाव से बोलते-चालते ही ज्ञानपूर्वक मृत्यु हो जायगी। श्रावण का महीना है। पानी बरसना असम्भव नहीं है।"

सोमवार को हमलोग काशी पहुँचे थे। धीरे-धीरे बृहस्पतिवार आ पहुँचा। रात को दो बजे अथाह वृष्टि हुई। मैं प्रातःकाल होते ही शास्त्रीजी के पास पहुँचा। वे बिगड़कर बोले—"यहाँ क्या चले आते हो? जल्दी जाओ। कहीं एकान्त में रथी बनाकर रख दो। ठीक एक बजे दिन में उनका अवश्य काशीवास हो जायगा।"

मैंने वापस आकर पिताजी को गोदान कराया। बहुत-सा अन्न भी उनसे संकल्प कराकर ब्राह्मणों तथा गरीबों को बाँटा। धीरे-धीरे अन्तिम समय आ पहुँचा। मेरा हृदय कम्पायमान होने लगा।

पिताजी ने कहा—"मुझे चारपाई से उतारो। बड़ी घबराहट मालूम पड़ती है।"

मैंने गोबर से लिपी हुई जमीन पर कम्बल बिछाकर सिरहाने कुश का पुलिन्दा रखकर सुला दिया। मैं बार-बार घड़ी की ओर देख रहा

था। पिताजी बार-बार सुलाने और उठाने के लिये कहते और 'शिव-शंकर' जपते भी जाते थे।

उन्होंने फिर कहा—"मुझे दीवार के सहारे बैठा दो।"

वैसा ही किया गया।

फिर कहा, एक घूँट गंगाजल पिला दो, प्यास लगी है।

गंगाजल मुँह में दिया गया। 'घट'-सी आवाज हुई और आँखें खुल गईं। बस, क्या था, मानव-लीला समाप्त हो गई!

उस समय मैं, मेरी माता, मेरा छोटा भाई शारदाप्रसाद, सभी रोने लगे। लोग कहते हैं कि मरने के बाद मुख भयंकर हो जाता है। पिताजी का मुख अत्यन्त प्रसन्न जान पड़ता था। उनके मुख पर शान्ति की छटा छहर रही थी। गौरीपति शंकर ने पिताजी के कानों में अवश्य 'तारक मंत्र' (ॐ रां रामाय नमः) का मोक्षप्रद उपदेश दिया था, तभी तो मुख इतना प्रसन्न था।

उस दिन विक्रम-संवत् १९६३ श्रावण शुक्ल षष्ठी सोमवार था। समय मध्याह्न ठीक एक बजे।

मैंने फुफेरे भाई भीमसेनजी से पूछा, अब क्या करना चाहिये? उन्होंने कहा, इनकी लाश भारी है, कंधे पर लेकर मणिकर्णिका-घाट पर पहुँचाना हमलोगों के लिये कठिन है। इसलिये नाव पर ले चलिये। नाव पर रखकर, नवीन वस्त्र से ढककर, चन्दन-पुष्पादि से पूजन कर, मणिकर्णिका की ओर ले चले धारा उलटी थी, बड़ी कठिनता से पार करने लगे।

सायंकाल हो रहा था। घाटों पर शहनाइयाँ बज रही थीं। मणि-कर्णिका पर दाह करके दो बजे रात को हमलोग घर पर लौटे।

यह भी पिताजी के पुण्य का प्रभाव था कि जबतक उनकी चिता जलती रही तबतक एक बूँद भी नहीं गिरी ; पर जब हमलोग उनकी दाह-क्रिया करके घर आये तब मूसलधार वृष्टि होने लगी।

इसके बाद हमलोग डुमराँव चले आये। यहाँ आकर सब श्राद्ध-कृत्य समाप्त किया। किन्तु उनसे वियोग होने का दुःख आज भी वर्त्तमान है। जब मैं उनकी दया का स्मरण करता हूँ तब हृदय की गति विलक्षण हो जाती है। वे अब नहीं हैं ; किन्तु अब भी उनका स्वाभाविक प्रेम मेरे हृदय में वर्त्तमान है। उनकी भव्य मूर्त्ति सदा मेरे नेत्रों के आगे खड़ी रहती है। मैं उनको देवता समझता हूँ। उनका आचरण अलौकिक था। वे पवित्रता की प्रत्यक्ष मूर्त्ति थे।

अद्यैव हसितं गीतं चलितं यैः शरीरिभिः।
अद्यैव तेन दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम्॥

सप्तम अध्याय

मेरठ और राँची में

पांडेय उमापतिदत्त शर्मा ने श्रीविशुद्धानन्द-सरस्वती-विद्यालय को त्यागकर कुछ दिनों तक गवर्नमेंट-ट्रांसलेटर का कार्य किया। फिर अपनी जन्मभूमि 'चिलहरी' में चले आये। 'चिलहरी' गाँव हमारे 'डुमराँव' से अति निकट है। वह सम्पन्न क्षत्रियों की बस्ती है। वहाँ बारात की महफिल बहुत अच्छी सजती है। वहाँ की मजलिस की शोभा देखते ही बनती है।

हम और वे दोनों ही बेकार होकर चुप बैठ गये। बहुत ही शीघ्र उन्होंने एक नौकरी ठीक की। मेरठ-कालेज के संस्कृत-प्रोफेसर दो बरस की छुट्टी लेकर अपने घर चले गये। वही जगह खाली हुई। आप उसी जगह पर काम करने के लिये वहाँ बुलाये गये। किन्तु आप संस्कृत में ऐसे प्रवीण नहीं थे कि आइ० ए० और बी० ए० क्लास को संस्कृत पढ़ा सकें। इसलिये उन्होंने अपने लिये एक 'ट्यूटर' रखना चाहा, जो उनको संस्कृत का वह भाग पढ़ावे जो आगामी दिन उनको कालेज में पढ़ाना हो।

आप मेरे पुराने मित्र थे। दोनों साथ ही मेरठ पहुँचे। कालेज के सेक्रेटरी आनरेब्ल रायबहादुर लाला रामानुजदयालुजी की कोठी पर उतरे। दूसरे दिन दस बजे पांडेजी कालेज गये और चार्ज लिया।

आपस में यह समझौता हुआ कि कालेज से ८०) मिलेंगे। उनमें ३०) आप लेंगे और ३०) मुझको देंगे। बचे हुए बीस रुपये में हम दोनों का भोजनाच्छादन होगा। मैं रोज दोनों जून रसोई बनाऊँगा और कालेज का वह पाठ्यग्रंथ भी पढ़ाऊँगा, जो आपको दूसरे दिन पढ़ाना होगा।

हमलोग सदा साथ ही रहते थे; पर जब कालेज के उक्त सेक्रेटरी लालाजी आते थे तब मैं किसी दूसरी जगह चला जाता था। जब एकान्त होता था, तब पांडेजी को पढ़ा दिया करता था।

एक दिन लालाजी की बिरादरी में शादी का जल्सा हुआ। गायकाचार्य श्रीविष्णु दिगम्बर पलुस्करजी गाने के लिये बुलाये गये। वे अपने पार्षदों के साथ लाहौर से आ पहुँचे। शहर में बड़ी धूम रही। उनका गाना सुनने के लिये नागरिक जन बादलों की भाँति उमड़ पड़े। सेक्रेटरी साहब पांडेयजी को लेकर बारात में चले। मैं एक दर्शक के रूप में साथ चला।

विष्णु दिगम्बरजी का गाना नौ बजे रात से प्रारम्भ होनेवाला था। हमलोग तथा दर्शक-गण सात ही बजे से पहुँचकर डटे हुए थे। लालाजी ने कहा, अभी देर है, तबतक धार्मिक व्याख्यान हो। पांडेयजी से, खड़े होकर कुछ कहने के लिये, अनुरोध किया। पांडेयजी खड़े तो हुए;

पर दस मिनट से अधिक न बोल सके। मित्र की ग्लानि मुझसे सही न गई। लालाजी भी कुछ हताश जान पड़े। तब मैंने लालाजी से प्रार्थना की—यदि आज्ञा हो तो मैं कुछ कहूँ। लालाजी अवहेलना-पूर्वक मुसकुराकर बोले—तुम क्या बोलोगे ? बैठो, तमाशा देखो !

मैंने फिर आग्रह के साथ बोलने के लिये आज्ञा माँगी। लालाजी ने मन में सोचा—यदि यह मूर्ख कुछ कहेगा तो सब लोग हँसेंगे ; अच्छा, यह भी तो एक विनोद की सामग्री होगी।

लालाजी ने मुसुकाते हुए कहा—अच्छा, उठो, जाओ, बोलो।

मैं साधारण वेश में था। स्टेज पर जाकर खड़ा हो गया। पहले तीन-चार श्लोक बड़े जोर से मधुर स्वर में कहा। सुनते ही सभी सभासद उत्कंठित हो गये। इसके बाद विवाह-विषयक लम्बा व्याख्यान प्रारम्भ किया, जो एक घंटे में समाप्त हुआ। उसमें संस्कृत के महाकाव्यों और धर्मशास्त्रों के अनेक प्रमाण एवं उदाहरण प्रकरणानुसार कहे गये। मनोरंजक श्लोकों और व्रजभाषा के ललित कवित्तों से व्याख्यान अत्यन्त रोचक हो गया।

दर्शक बड़े प्रसन्न होकर ताली बजाने लगे। लालाजी आश्चर्य में डूब गये। जब मैं आकर लालाजी के पीछे बैठने लगा तब लालाजी ने कहा—"तुम तो बड़े विद्वान् वक्ता जान पड़ते हो !" मैंने कहा—"मैं तो साहित्य का एक विद्यार्थी मात्र हूँ।"

थोड़े दिनों के बाद लालाजी ने अपनी लड़कियों को संस्कृत तथा हिन्दी पढ़ाने के लिये मुझे गृह-शिक्षक नियुक्त किया। पन्द्रह रुपये

मासिक नियत हुआ। अब पैंतालीस रुपये की मासिक आय होने लगी। धीरे-धीरे मैं लालाजी का कृपापात्र बन गया।

गरमी की छुट्टी हुई। कालेज बंद हुआ। पांडेयजी सदा के लिये मेरठ छोड़कर घर चले आये और कलकत्ता जाकर गवर्नमेंट-हिन्दू-स्कूल में अध्यापक हो गये।

लालाजी ने कहा—"अब तुम्हीं एक वर्ष संस्कृत-प्रोफेसर होकर कार्य करो। पुराने प्रोफेसर के आ जाने पर तुम्हें कोई दूसरी नौकरी दिला दूँगा।"

मैंने कार्य प्रारम्भ किया। छात्र मुझसे अतिशय सन्तुष्ट हुए। इसी बीच में महात्मा गोपालकृष्ण गोखले मेरठ में उतरे और लालाजी की कोठी पर ठहरे। लालाजी किसी कारण दो दिन पहले ही बाहर चले गये थे। किन्तु जाते समय मुझे पूरा रुपया दे गये कि मैं गोखलेजी का यथोचित भोजनादि सत्कार कर सकूँ। मैंने खूब सत्कार किया।

मैंने पाँच श्लोक ऐसे सुन्दर बनाकर गोखलेजी को सुनाये जिनके दो-दो अर्थ होते थे। एक से श्रीकृष्णजी का वर्णन और दूसरे अर्थ से गोखलेजी का। वे मेरा उत्साह देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए।

वैश्य-महासभा के दो वार्षिकोत्सवों में भी मुझे जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। दोनों में दो-दो दिन लगे। प्रारम्भिक व्याख्यान मुझे ही देना पड़ता था। इसलिये दोनों उत्सवों में तीस-तीस रुपये नगद मिले और भोजन तथा इंटर क्लास का भाड़ा भी। पहला अधिवेशन अम्बाला (पंजाब) में और दूसरा मेरठ में हुआ। दर्शक छः हजार के लगभग

एकत्र होते थे। यहीं पंजाबकेसरी लाला लाजपत राय से मेरा परिचय हुआ। अहा ! उनके ऐसा बोलनेवाला फिर न मिला। ऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम के वावदूक व्याख्याता पं० दुर्गादत्त पंत से मेरठ ही में परिचय हुआ।

लालाजी की लड़कियों को पढ़ाने के अतिरिक्त मैं प्रतिदिन रात को वाल्मीकीय रामायण की कथा भी लालाजी को सुनाया करता था। इसके लिये दस रुपये मासिक मिलते थे ; लड़कियों की पढ़ाई के लिये पंद्रह रुपये अलग। इस तरह लालाजी से पचीस मासिक का लाभ होता था। कालेज से पचास था ही। सब मिलकर पचहत्तर रुपये प्राप्त होते थे। मैं मेरठ में अपनी पत्नी और कन्या के साथ रहता था। इसलिये स्त्रियों में भी परस्पर प्रेम हो गया। लालाजी की धर्मपत्नी मेरी स्त्री को बहुत प्यार करती थीं।

कार्य करते-करते एक वर्ष पूरा हो गया। गरमी की छुट्टी आई। कालेज बन्द हुआ। यह निश्चित था कि पुराने संस्कृत-प्रोफेसर जुलाई से कालेज खुलने पर कार्य करेंगे। लालाजी ने यद्यपि मुझे दूसरी नौकरी देने का वचन दिया तथापि मेरा चित्त वहाँ से उचट गया। मैंने आठ दिनों के भीतर ही बम्बई के प्रसिद्ध श्रीवेंकटेश्वर प्रेस के स्वामी से बातचीत करके पत्र-द्वारा अपनी नौकरी वहाँ के शास्त्रीय विभाग में ठीक कर ली। जाने की तिथि भी निश्चित हो गई। किन्तु मेरे भाग्य में विधाता ने कुछ और ही लिखा था।

इसी बीच में पांडेय उमापतिदत्त शर्मा ने कलकत्ता से मेरे पास पत्र लिखा—"पटना में इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स मिस्टर ई० एल्० प्रेस्टन

और पटना-ट्रेनिंग-कालेज के प्रिंसपल जे० एच्० थिकेट एम्० ए०—दोनों एक ही कोठी में रहते हैं और दोनों ही हिन्दी पढ़ना चाहते हैं। तुम जाकर दोनों साहबों को पढ़ाओ। दोनों मिलकर पचास रुपये मासिक देंगे और पढ़ने के बाद तुम्हें कोई सरकारी नौकरी भी दिला देंगे। जाने में देर न करना।"

पत्र देखते ही मैं मेरठ से चल पड़ा। लालाजी के समस्त परिवार ने, तथा खुद लालाजी ने भी, मुझे बहुत रोका और अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये। तथापि मेरठ त्याग ही दिया। प्रारब्ध प्रबल है!

पटना पहुँचकर उक्त दोनों साहबों को पढ़ाने लगा। दोनों बड़े ही सज्जन और मिलनसार मिले। दोनों से भाई-सा प्रेम हो गया।

प्रेस्टन साहब अविवाहित थे। पहले पादरी का काम करते थे, पीछे इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स हो गये। थिकेट साहब विवाहित थे। उनकी मेम बड़ी सुशीला थीं। वे भी थोड़ी-थोड़ी हिन्दी मुझसे सीखा करती थीं।

ये दोनों मुझपर बहुत विश्वास करने लगे। इसलिये मैं इन दोनों के घर का एक प्रकार से मैनेजर हो गया।

प्रेस्टन साहब की पढ़ाई खतम हो गई। दस महीने पढ़कर परीक्षा देकर पास हो गये। किन्तु अभी थिकेट साहब की पढ़ाई बाकी थी। इसी बीच एक नई घटना हो गई।

डुमरावँ की महारानी बेणीप्रसाद कुमारीजी का स्वर्गवास हो गया। मरने के समय महारानी ने जगदीशपुर के रईस बाबू गयाप्रसाद

सिंह के पुत्र बाबू जंगबहादुर सिंह को दत्तक पुत्र बनाया और उनका नाम श्रीनिवासप्रसादसिंह रखा। गोद लेने के एक ही दिन बाद महारानी का स्वर्गवास हो गया; इसलिये कुछ लिखा-पढ़ी नहीं हो सकी।

इधर बाबू केशवप्रसाद सिंह, जो अन्त में विजयी महाराज हुए, राज्य के लिये लड़ने लगे। दत्तक राजकुमार राँची पहुँचाये गये। उनके साथ राज-विभव पूरे तौर से रखा गया। लगभग पचास आदमी साथ में थे। एक डाक्टर, गार्जियन उनके पिता, तथा जमादार के साथ ग्यारह सशस्त्र सिपाही रखे गये।

अब एक 'ट्यूटर' (गृह-शिक्षक) की आवश्यकता हुई। अखबारों में विज्ञापन छपे। मैं वह स्थान पाने के लिये चेष्टा करने लगा। (स्वर्गीय) पंडित रमावल्लभ मिश्रजी एम० ए०—सेक्रेटरी, बोर्ड आफ रेवन्यू—की सहायता से वह पद मुझे मिल गया।

मैं अपनी जगह पर मित्रवर पं० रामदहिन मिश्रजी काव्यतीर्थ को नियुक्त कर राँची चला गया। थिकेट साहब ने मुझे जाने से बहुत रोका, बहुत समझाया। पर भावीवश मैं न रुक सका—राँची जाने के लिये तैयार हो गया।

प्रेस्टन साहब की यह इच्छा थी कि जब उनका पढ़ना खतम हो जाय तब मुझे पटना-कालेजिएट स्कूल में सेकंड पंडित बनाकर रखें। इसीलिये, सेकंड पंडित का स्थान चार महीने से खाली पड़ा था, पर वे किसी को नहीं देते थे। ऐसा था उनका कृपापूर्ण स्नेह!

जब मैं राँची जाने के समय प्रेस्टन साहब से बिदा माँगने गया

तब उन्होंने क्रोध से मुँह फेर लिया; क्योंकि उनकी तनिक भी इच्छा नहीं थी कि मैं राँची जाऊँ।

थिकेट साहब के पास गया तो चुप बैठ गये, बड़ी गम्भीरता से 'गुड बाइ' कहा। किन्तु जब मेम साहबा के पास पहुँचा तो वे बोलीं—क्या हमलोगों को छोड़कर जाते हो? मैंने आँखें उठाकर उनकी ओर देखा तो उनके दोनों नेत्र आँसुओं से भरे थे। बड़ा ही मूक कारुणिक दृश्य था।

जो हो, मेरे सिर भूत सवार था। राँची जाकर राजकुमार को पढ़ाने लगा। कुछ दिनों के बाद एक इंगलिश-ट्यूटर की जरूरत जान पड़ी। तब, रदरफोर्ड' नामक एक यूरोपियन नियुक्त किये गये। ये निलहा अंग्रेज थे। इनका जीवन कुलियों के साथ बीता था—इसलिये भोजपुरी भाषा अत्यन्त शुद्धतापूर्वक बोलते थे—लम्बी भोजपुरी लाठी लेकर रास्ते में चलते थे, जिसको देखकर दूसरे यूरोपियन लोग ठहाका लगाते थे।

अपनी मेम से इनकी नहीं पटती थी; इसलिये इन्होंने एक दिन स्वयं गोली मारकर आत्महत्या कर ली। उस समय इनकी मेम कोठी के बरामदे में एक यूरोपियन से बातें करती थी। जब धड़ाके की आवाज हुई तब सब लोग भीतर गये। खोपड़ा फटकर चूर-चूर हो गया था। इन्होंने मुँह में दुनाली बंदूक लगाकर घोड़ा खींचा था। मरने के पहले अपनी टेबुल पर एक पुर्जा लिखकर रख दिया था—'मुझे गाड़ना मत, जला देना'। इसलिये उसी कोठी के बागीचे के एक कोने में,

बाँस की चटाइयों में लपेटकर, किरासन के तेल में भिंगोकर, जला दिये गये। मेम राँची छोड़कर चली गई।

इनके बाद एक दूसरे यूरोपियन, राजकुमार के गार्जियन और इंगलिशट्यूटर बनकर, आये। ये कई राज्यों में मैनेजर रह चुके थे। बड़े ही सभ्य और न्यायी थे। इनका नाम था—'एंगस ओगिलवी'। जब मैं राजकुमार को सुबह-शाम पढ़ाने के लिये बैठता था तब ये भी पास ही कुर्सी लगाकर बैठ जाते थे। मेरी पढ़ाई का क्रम देखकर बहुत प्रसन्न होते थे। मेरे लिये इनके हृदय में एक सुन्दर स्थान बन गया। मुझपर इनकी असीम कृपा रहती थी।

राजकुमार के साथ राजकुमार के सहोदर बड़े भ्राता बाबू नरसिंह प्रसादसिंहजी (दादुलजी) भी रहते थे। वे राँची-जिला-स्कूल में पढ़ते थे। वहीं से मैट्रिकुलेशन पास किया। पास करने के बाद सबरजिष्ट्रार हुए। मैं उनको भी हिन्दी और संस्कृत पढ़ाता था। मैं उनका हार्दिक मित्र बन गया। वे मेरी आर्थिक सहायता भी करते थे। ऐसा उदार, सच्चरित्र, न्यायशील तथा दयालु कोई नवयुवक डुमरावँ और जगदीश-पुर के उज्जैन-वंश में नहीं था। कई बार न्याय के लिये अपने पिताजी से भी संकोच छोड़कर बातें करते थे। उनसे संग छूटने का खेद मुझे जीवन-भर रहेगा।

मैंने चार वर्षों तक राँची में बड़ी शान-शौकत के साथ काम किया। अन्त में राजकुमार के पिता से कुछ चुगलखोरों ने यह कहकर उनका कान भर दिया कि ये महाराज केशवप्रसादसिंह के गुप्त मित्र हैं

और उन्हीं की भलाई चाहते हैं। किन्तु मैं अपना कार्य पूर्ववत् करता रहा। मैनेजर साहब की कृपा के भरोसे निर्भय रहा करता था।

मैंने थिकेट साहब से पत्र-व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। थिकेट साहब ने लिखा—धैर्य रखो, मैं तुम्हें शीघ्र बुलाऊँगा।

इसी बीच राजकुमार 'आरा' की अदालत से हार गये। कलकत्ता-हाइकोर्ट से भी सुलह हुई—राजकुमार को प्रति वर्ष एक लक्ष रुपया देकर दस वर्ष में दस लाख पूरा करने के लिये महाराज केशवप्रसाद सिंहजी से स्वीकार कराया गया। अब मेरी तबीयत उचट गई।

अष्टम अध्याय

पटना-कालेज में प्रोफेसर

इसी बीच भागलपुर में नया ट्रेनिंग-स्कूल खुल गया। पटना ट्रेनिंग-स्कूल के हेडपंडित श्रीगंगाधर शास्त्रीजी भागलपुर भेज दिये गये। पटना-ट्रेनिंग-स्कूल में इस तरह जगह खाली हुई। यह स्कूल थिकेट साहब के हाथ में था। उन्होंने कृपा करके इसी स्कूल में हेडपंडित का स्थान मुझे दे दिया।

मैं सानन्द अपनी जगह पर पहुँच गया। रायसाहब बाबू राजेन्द्र-प्रसादजी हेडमास्टर की अध्यक्षता में उत्साह-पूर्वक कार्य करने लगा। मेरी पढ़ाई से हेडमास्टर तथा लड़के बहुत ही प्रसन्न हुए।

मैं राँची से केवल दो सप्ताह की छुट्टी लेकर आया था। जब मैंने देखा कि अब मैं यहाँ स्थिर हो गया तब थिकेट साहब की अनुमति से उपर्युक्त 'एंगस ओगिलवी' साहब के पास त्यागपत्र भेज दिया। साहब ने बड़े खेद के साथ मेरे पास पत्र भेजा—"तुम्हारे चले जाने से मेरा एक रत्न खो गया। अच्छा, अपने पुराने मित्र थिकेट साहब के साथ सुखी रहकर कार्य करो।"

उनके दिये हुए पत्र और सर्टिफिकेट अबतक सुरक्षित हैं। मेरे पटना आ जाने से थिकेट साहब की मेम बहुत ही प्रसन्न हुईं।

थिकेट साहब पूर्व जन्म के मेरे कोई आत्मीय जन थे। इसी लिये इनका मुझ-सरीखा साधारण जन पर इतना अधिक स्नेह था। ये मेरी भलाई के लिये सब कुछ करने को तैयार रहते थे। जब मुझसे बातें करते थे तब इनके हृदय में एक विशेष प्रकार का आनन्द होता था। इनकी कृपा का मुझे बड़ा गर्व हो गया था। कई बार इन्होंने यूरोपियनों से बातें करना छोड़कर मुझसे बातें की थीं। सचमुच ये मेरे भाग्य-विधाता थे। इन्हीं की कृपा का फल है कि आज सवा सौ रुपये मासिक पेन्शन पाकर सुखपूर्वक जीवन का व्यवहार चला रहा हूँ।

थिकेट साहब हिन्दी के बड़े प्रेमी थे। हिन्दुस्तानियों से हिन्दी ही में बातें करना पसन्द करते थे। खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित होनेवाली साप्ताहिक 'शिक्षा' का एक वर्ष तक इन्होंने ही बड़ी योग्यता के साथ सम्पादन किया था।

सन् १९१३ ई० की पहली जनवरी से पटना-ट्रेनिंग-स्कूल में कार्य करना प्रारम्भ किया। दो वर्षों के बाद, पटना-कालेज में, १९१५ ई० की पहली जनवरी से, एक संस्कृत तथा हिन्दी जाननेवाले प्रोफेसर की नियुक्ति का विचार निश्चित हुआ। मैंने थिकेट साहब से अपनी इच्छा प्रकट की। बहुत-से लोग पदाकांक्षी हुए। किन्तु थिकेट साहब के अमोघ उद्योग से, अनेक योग्यातियोग्य व्यक्तियों के रहते हुए भी, मैं ही उस पद पर नियुक्त किया गया।

उस समय कालेज में संस्कृत के सीनियर प्रोफेसर थें महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा और उनके सहायक थे पंडित देवदत्त त्रिपाठी। शर्माजी और त्रिपाठीजी मुझपर बड़ी कृपा रखते थे। शर्माजी उद्भट विद्वान् थे; मेरे साहित्यिक विनोद का रस खूब चखते थे। इसके बाद श्रीमान् डाक्टर हरिश्चन्द्र शास्त्रीजी सीनियर होकर आये; इनकी मुझपर पूरी कृपा रहती थी।

सन् १६१६ ई० की जुलाई में पटना ही में एक नया कालेज खोला गया, जिसका नाम पड़ा 'न्यू कालेज'। इसमें हाई स्कूल की ऊपरी चार कक्षाएँ (८, ९, १०, ११) और कालेज की—आइ० ए० की—दो कक्षाएँ रखी गईं। पटना-कालेज के बहुत से प्रोफेसर इसमें पढ़ाने के लिये भेजे गये। मैं भी भेजा गया। यहाँ मैं सीनियर प्रोफेसर बनाया गया। मेरे सहायक प्रोफेसर हुए पंडित धर्मराज ओझाजी एम्० ए०, काव्यतीर्थ तथा पंडित ब्रह्मदत्त त्रिपाठीजी काव्यतीर्थ। इन दोनों ने मेरे साथ बहुत ही अच्छा व्यवहार किया।

इस कालेज में क्रमशः मिस्टर आक्टर लोनी, श्रीशरच्चन्द्र मजुमदार, मिस्टर कपूर, श्री सुविमलचन्द्र सरकार, श्री गोष्ठोहरिकृष्णसिंह, मिस्टर मूर, मिस्टर ह्विटमोर और मिस्टर स्पिलूट प्रिंसपल हुए। सभी मुझसे प्रसन्न रहे।

१९२७ ई० में यह कालेज तोड़कर फिर पटना-कालेज में मिला दिया गया—अर्थात् आइ० ए० की दो कक्षाएँ कालेज में और स्कूल की चार कक्षाएँ पटना-कालेजिएट स्कूल में मिला दी गईं। हमलोग
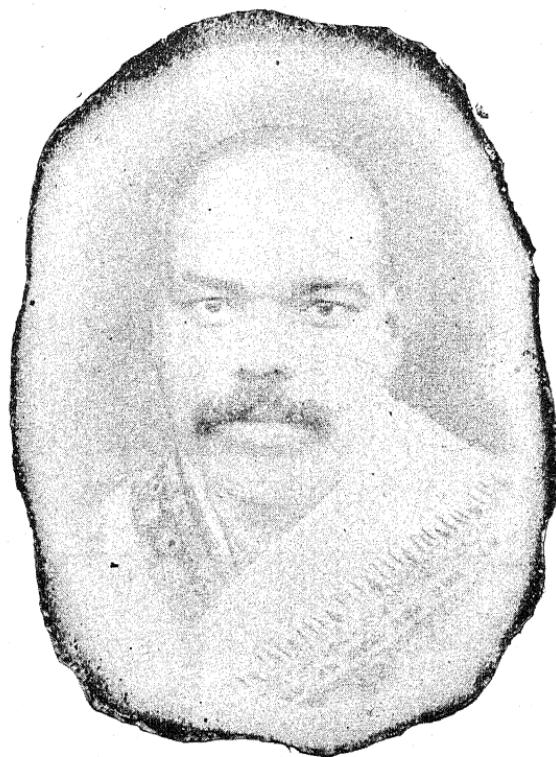
स्वर्गीय महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा

[पृष्ठ १०८]
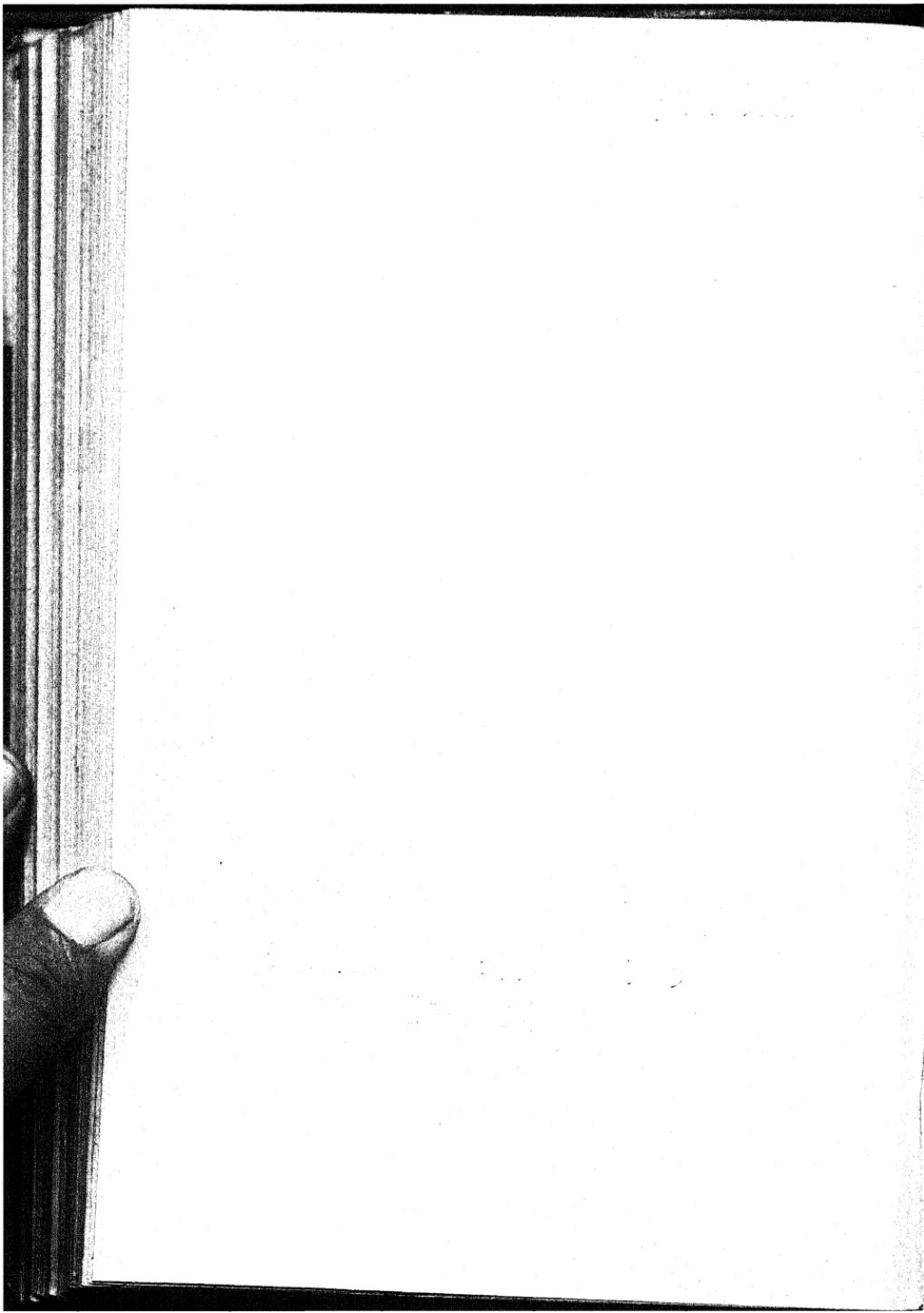
भी सब प्रोफेसर पटना-कालेज में लौटा लिये गये। सब टीचर भी कालेजिएट स्कूल में लौटा दिये गये।

मैं फिर पटना-कालेज में अपने पद पर पूर्ववत् कार्य करने लगा। पटना-कालेज में १६ घंटे काम करना पड़ता था—चार घंटे हिन्दी और बारह घंटे संस्कृत पढ़ाना पड़ता था। साइंस-कालेज में जाकर दो घंटे—अर्थात् आइ० एस-सी० की दो कक्षाओं (फर्स्ट इयर और सेकेंड इयर) में हिन्दी पढ़ाने का कार्य भी मेरे जिम्मे था।

पटना-कालेज में, मेरे कार्य-काल में, मिस्टर वी० एच० जैक्सन, मिस्टर इ० ए० हार्न, मिस्टर पी० ओ० हिटलाक और मिस्टर एच्० लम्बर्ट—ये चार प्रिन्सपल हुए। सभी दयालु तथा सज्जन थे। चारों की कृपा मुझपर थी।

इन तीनों कालेजों में अनेक प्रिंसपल हुए, पर जैक्सन साहब के समान वीर, प्रतापी और शानदार कोई प्रिंसपल न हुआ।

अपने कार्य-काल में मैं तीन बार बीमार हुआ। एक बार तेरह दिनों की, दूसरी बार तीन महीने की और तीसरी बार ग्यारह महीने की छुट्टी ली। इसी तीसरी बार की छुट्टी में मैंने, अपनेको कार्य करने के लिये सर्वथा असमर्थ देखकर, पेन्शन ले ली। बाईस वर्षों तक सरकारी नौकरी करके ता० ६ दिसम्बर १९३४ ई० से अपने घर बैठ गया। तब से रोगी होकर जीवन व्यतीत करने लगा। बड़ी कठिनता से, इसी व्यग्रता की अवस्था में, यह आत्मकथा लिखी है। इससे निश्चय है कि इसमें अगणित त्रुटियाँ होंगी। जो हो, मैंने अपने परम शुभचिन्तक बाबू

रामलोचनशरणजी तथा बाबू शिवपूजनसहायजी के आग्रह-भरे अनुरोध से इसको लिख देना ही अपना कर्त्तव्य समझा ।

ये धीरास्त्यक्त्वाशुचं धैर्यं विपदि धरन्ति ।
लोके ते दुःखोदधिं श्रमं विनैव तरन्ति ॥

नवम अध्याय

मेरी मित्र-मंडली

कोमलानि मधुराणि शुचि सुखद भक्तिभरितानि।
नाशयन्ति दुरितानि किल राधाहरिचरितानि ॥

मेरी आत्मकथा से मेरे मित्रों का भी विशेष सम्बन्ध है। इसलिये उनलोगों के विषय में भी अब दो-चार बातें लिख देना उचित जान पड़ता है—

[१] श्रीमहादेवप्रसाद साहु

आप डुमरावँ के ठठेरी-बाजार मुहल्ले में रहते हैं। आपके पिता श्रीराधाकृष्णदास (राधेकिसुन साहु) बड़े ही धर्मात्मा, परोपकारी, व्यवहार-चतुर, सम्पन्न और भजनानन्दी थे—इनका जन्म जैसवाल-वैश्य-वंश में हुआ था और ये मेरे पूज्य पिताजी के बालसखा थे—पिताजी को जब-जब कुछ रुपये-पैसे की जरूरत पड़ती थी, इन्हीं से लेते-देते थे—जब पिताजी काशी-यात्रा करने लगे तब अपने समस्त परिवार को इन्हीं के हाथ सौंप गये।

महादेव साहुजी मेरे बालसखा हैं। इन्होंने भी मित्रता का जैसा निर्वाह किया वैसा मेरे साथ कोई नहीं कर सका। ये बड़े ही सात्विक और निष्कपट पुरुष हैं। इनसे मैंने हजारों रुपये ऋण लिये और दिये, पर इन्होंने मुझसे कभी किसी प्रकार का कागज-पत्र नहीं लिखवाया। इस घोर कलि में ऐसा सच्चा मित्र मिलना असम्भव है। विचित्रता तो यह है कि जैसा प्रेम मुझसे रखते हैं वैसा ही प्रेम इनकी पतिव्रता पत्नी भी मेरी पत्नी के साथ रखती हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि हमलोग इस प्रकार का सौहार्द-सुख कुछ दिनों तक और भोग करें।

[२] श्रीमान् बाबू रामलोचनशरणजी

जिस समय (१९१३-१४ ई० में) मैं ट्रेनिंग स्कूल के हेडमास्टर रायसाहब बाबू राजेन्द्रप्रसादजी की अध्यक्षता में हेडपंडित का कार्य करता था, उस समय आप एक व्याकरण बनाकर रायसाहब के पास ले आये और मुझसे भी आपने सम्मति माँगी। मैंने यथामति अपनी सम्मति लिखकर दे दी। उस समय आपसे साधारण परिचय हुआ। जब आपने (१९२७-२८ ई० के लगभग) पटना में 'पुस्तक-भंडार' की एक शाखा खोलने का बिचार किया, तब आप लालबाग में मेरे मकान के पड़ोस में ही मकान भाड़ा लेकर ठहरे। मैं आपके पास विशेष आने-जाने लगा। इसलिये परिचय बढ़ गया और घनिष्ठता हो गई। फिर क्या था—'इक्षोरग्रात् क्रमशः पर्वणि-पर्वणि यथा रसविशेषः; तद्वत्सज्जनमैत्री विपरीतानान्तु विपरीता।'

मैंने १९२७ ई० में लालबागवाला अपना मकान बनवाया। उसमें

बहुत खर्च पड़ गया। मैंने एक पत्र आपके पास भेजा जिसमें अपना अर्थसंकट प्रकट किया। पत्र पाते ही आप स्वयं आ पहुँचे। मेरा उद्धार कर दिया। मैं आश्चर्य में पड़ गया। मैंने लज्जित होकर आपसे हैंडनोट आदि लिखवा लेने की प्रार्थना की। आपने कहा—आपका काम पुस्तक लिखने का है, हैंडनोट लिखने का नहीं। जब-जब आपको मेरे अर्थसंकट की सूचना मिली, तब-तब आपने विना कहे ही सहायता की। अब तो ऐसी घनिष्ठता हो गई है कि अब मित्र के बदले आपको अपना सहोदर लघुभ्राता समझता हूँ। कारण यह है कि मेरे सहोदर दोनों छोटे भाइयों ने विना अपराध मुझसे सम्बन्ध तोड़ दिया है, रुग्णावस्था में भी कुछ सहानुभूति नहीं रखते। भगवान् ही मेरे सहायक हैं, उनका नाम 'दीनबन्धु' है। वही उनका कल्याण करें।

[३] जस्टिस कुलवन्त सहाय

आप पटना के परम प्रसिद्ध पुरुष हैं। बहुत दिनों तक पटना-हाइकोर्ट में जज रहकर पेन्शन पाते हैं। बड़े ही धर्मशील पुरुष हैं। अपने जन्म से कायस्थ-कुल को गौरवान्वित तथा पवित्र किया है। मुझपर बड़ी कृपा रखते हैं। आपके द्वितीय पुत्र बाबू रामनन्दनप्रसादजी तथा गिरिजाप्रसादजी मेरे छात्र हैं।

[४] श्रीयुत रेवरेंड डैन

आप पटना के बैपटिस्ट-मिशन में रहते थे। प्रतिदिन ईसाई-धर्म का उपदेश देते थे। संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। ईश, केन, कठ आदि उपनिषदों का भलीभाँति अध्ययन किया था। हिन्दी में घंटों व्याख्यान

देते थे। पटना-कालेज की मेरी नियुक्ति में बड़ी सहायता की थी। अपनेको ब्राह्मण कहते थे। भेंट होने पर 'गुडमार्निङ्ग' आदि के बदले मेरे साथ 'प्रणाम', 'नमस्कार' आदि का व्यवहार करते थे। पटना का यूरोपियन समाज आपको गुरु मानता था। आपकी आज्ञा का उल्लंघन कोई नहीं करता था। आप यूरोपियन लोगों के घर में बे-रोक-टोक घुस जाते थे। सब आपको घेरकर खड़े हो जाते थे। सभी आपका उपदेश सुनने के लिये उत्कंठित रहते थे। आपको बहुत-से लोग 'लाट-पादरी' कहते थे।

[५] श्रीयुत डब्लू० डब्लू० टी० मूर, एम्० ए०

आप आयरिश थे। गणित के बहुत बड़े विद्वान् थे। साइंस कालेज (पटना) में प्रधान गणिताध्यापक थे। कुछ दिनों के बाद इस कालेज के प्रिन्सपल भी हो गये। मैंने आपको हिन्दी पढ़ाई थी, इसलिये मेरे मित्र बन गये थे। आप बड़े ही प्रसन्नमुख थे, सदा हँसा करते थे। ऐसा हँसमुख मनुष्य मैंने आजतक नहीं देखा। आपका हृदय अत्यन्त दयालु, निष्कपट तथा उदार था। मेरे लिये सब कुछ करने को तैयार रहते थे। मेरे अनुरोध से आपने कई लोगों को अच्छी जीविका दिलवा दी। हिन्दुस्तान छोड़कर आप आयरलैंड चले गये। आपसे साथ छूटने का मुझे बड़ा दुःख है। ईश्वर से प्रार्थना है कि जहाँ रहें, सुखी रहें।

[६] रायबहादुर बाबू कमलाप्रसाद

जब मैं राजकुमार को पढ़ाने के लिये राँची रहता था तब ये राँची-ट्रेनिङ्ग-स्कूल के हेडमास्टर थे। उसी समय इनसे परिचय और मित्रता

हुई जो आजतक अविच्छिन्न रूप से चली आती है। इनके कपट-रहित व्यवहार से मुझे बड़ा सन्तोष होता है। ये बड़े ही सज्जन, परोपकारी, गुणिजनाधार तथा स्पष्टवक्ता हैं। गवर्नमेंट में भी इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है।

[७] वैद्यरत्न पंडित ब्रजबिहारी चतुर्वेदीजी

आप मेरे परम मित्र और शुभचिन्तक होने पर भी परम पूज्य हैं। मेरी आपमें बड़ी भक्ति है। आप भी मुझसे भाई के समान प्रेम करते हैं। आप आयुर्वेद के अद्वितीय विद्वान् हैं। साहित्य, व्याकरण और उपनिषदों में भी आपकी पूरी गति है। आप बड़े परिश्रमी, सदाशय, परहितकारी तथा गुणग्राही हैं। भगवत् की कृपा से सांसारिक सभी सुख आपको सुलभ हैं। आप 'अस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च' के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र पं० हरनारायण चतुर्वेदीजी आप ही के समान विद्वान् तथा भाग्यवान् हैं—पटना के आयुर्वेद-कालेज के प्रिन्सपल हैं। आपकी कीर्त्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी होती जाती है। पीयूषपाणि वैद्य के अतिरिक्त आप बड़े अच्छे साहित्य-मर्मज्ञ भी हैं। महामना मालवीयजी पटना में आप ही के अतिथि होते हैं। निखिल भारतीय वैद्य-महासम्मेलन के आप एक सुदृढ़ स्तम्भ हैं। 'आयुर्वेद-रत्नाकर' तो हैं ही, सद्गुणरत्नाकर भी हैं।

[८] बाबू रामलखन मिश्रजी

आप भी डुमरावँ ही के रहनेवाले हैं। संसार के जितने प्रसिद्ध आर्ट हैं, सबमें आपकी गति है। हिन्दी, संस्कृत, उर्दू तथा बँगला के आप

ज्ञाता हैं। आपको डुमरावँ के सभी लोग प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। स्वर्गीय महाराज केशवप्रसादसिंहजी भी आपका बड़ा आदर-मान करते थे। आपका स्वभाव बड़ा ही उदार है। सच्चरित्रता के आप आदर्श हैं। संसार से विरक्त हैं, पर गृहस्थाश्रम ही में रहते हैं। लोग आपको मेरा मित्र समझते हैं, पर आप मेरे गुरु भी हैं। मैं आपसे बहुत ज्ञान प्राप्त कर चुका हूँ। अब भी जो बात समझ में नहीं आती, आप ही से पूछता हूँ। सूत-(बढ़ई)-वंश में आपका जन्म है। आपके पिता विश्वेश्वर मिस्त्रीजी बड़े ही कुशल कारीगर थे—डुमरावँ-राज में काम करते थे—यहाँ के राजा लोग इनको बहुत मानते थे। राज से आपको भू-सम्पत्ति भी मिली है। आपके दोनों पुत्र भी 'हर-फन-मौला' हैं।

[९] बाबू बद्रीनारायण साहु

ये डुमरावँ के सर्वप्रधान वैश्य हैं। धन में और जन में इनकी समता यहाँ कोई नहीं कर सकता। इनका वाणिज्य-व्यवसाय बहुत ऊँचे दर्जे का है। वस्त्र के बहुत बड़े व्यवसायी हैं। कलकत्ता में भी बहुत बड़ी आढ़त है। बक्सर (ई० आइ० आर०) में जो चीनी की मिल है उससे लाखों रुपये वार्षिक आय है। रौनियार-वैश्य-वंश में जन्म है। बड़े ही अभिमान-रहित पुरुष हैं। सात भाई हैं—उनमें कन्हैयाजी एम्० ए० बी० एल्० हैं और काशीनाथजी बी० एस्-सी० पास करके 'ग्लासगो' चले गये हैं। ये दोनों क्रमशः पटना-आर्ट-कालेज और सायंस-कालेज के छात्र हैं।

बाबू बद्रीनारायणजी के बड़े चाचा स्व० बाबू द्वारकाप्रसादजी

तथा पिता स्व० बाबू गंगाप्रसादजी मेरे मित्र थे। इनके पितामह बाबू व्रजमोहनराम साहुजी तथा बाबू प्रयागराम साहुजी मेरे पूज्य पिताजी के बालसखा और अनन्य मित्र थे। प्रयागराम साहुजी की स्थापित की हुई प्रयाग-संस्कृत-पाठशाला अब भी अच्छी अवस्था में है। विद्यार्थी परीक्षार्थियों का सब खर्च साहुजी देते हैं। इसके प्रधानाध्यापक पंडित रामाज्ञा मिश्रजी बड़े सुबोध विद्वान् हैं।

[१०] बाबू गंगाप्रसाद जायसवाल ('गंगाकवि')

जब से आपने होश सँभाला तभी से आप प्रायः मेरे साथ रहते हैं। आपने मुझसे संस्कृत तथा हिन्दी की शिक्षा पाई है। अवस्था मुझसे बहुत छोटी है तथापि समवयस्क मित्र के समान रहते हैं। आप रोग से बहुत डरते हैं। यदि मुझे एक दिन भी ज्वर हो जाय तो मेरे घर का आना-जाना भी बंद कर देते हैं! अब मैं बहुत बीमार रहता हूँ, इसलिये आपने मेरे घर आना-जाना छोड़ दिया है। आप बड़े शान्ति-प्रिय हैं। आपका घर और मेरा घर एक ही में सटा हुआ है—केवल दीवार का फर्क है, तथापि मुझे यह नहीं जान पड़ता कि आप घर में हैं या नहीं! जब आप अपने बैठक में बैठते हैं तब अपने बैठक का दरवाजा बंद ही किये रहते हैं! मुझसे नहीं रहा गया। मैंने आपकी इस अवस्था का वर्णन निम्नलिखित पद्य-द्वारा कर ही दिया—

[कवित्त]

रात-दिन रहैं चुपचाप निज घर ही में,
तनिक न खोंखते खखारते थुकत हैं।

द्वार पै पुकारैं नाहिं घर में समावैं चुप,
कब आते कब जाते थाह ना लगत है ॥
भेंट मुलाकात कर पाते ना पड़ोसवाले,
चउबीसो घंटे काम-काज में रहत हैं।
जैसवाल चौधरी खजानची गंगाप्रसाद,
डुमरावँ ठठेरी बाजार में बसत हैं ॥

आपकी दिनचर्या इस प्रकार है—

प्रात उठते ही नित्य जाते हैं बगीचे मध्य,
घर आय तेल लाय न्हाते हैं मुनीबजी।
बेगि ही बसन धारि, कछु जलपान करैं,
नव बजते ही झट जाते हैं मुनीबजी ॥
बारह बजे आय खाय जाते पुनि नौकरी पै,
सायंकाल आय पुनि धाते हैं मुनीबजी।
डुमरावँ - नगर - निवासी जैसवाल - वंश,
ये ही कवि 'गंगा' कहलाते हैं मुनीबजी ॥

आप 'ठाकुरराम तुलसीप्रसाद' नामक प्रतिष्ठित फार्म के सर्वप्रधान मुनीब हैं। इसलिये आपको 'मुनीबजी' कहकर पुकारते हैं।

आपका बड़े प्रतिष्ठित कुल में जन्म है। आपके प्राचीन पुरुष डुमरावँ-राज्य के खजानची थे। इसलिये अबतक आपलोग 'खजानची' शब्द से सम्बोधित किये जाते हैं। ये लोग यहाँ के जायसवाल-जाति के सरदार थे, इसलिये 'चौधुरी' शब्द भी इन लोगों के नाम के साथ

जोड़ा जाता है। आपके पिता शिवनारायण लालजी डुमरावँ-राज्य में एक प्रतिष्ठित कर्मचारी थे। आप हिन्दी के कवि हैं। उदाहरण देखिये—

[धन की शोभा]

गरीबों को गरीबी से बचाना धन की शोभा है,
जो रोता हो उसे कुछ दे हँसाना धन की शोभा है।
जो भूखा हो उसे भोजन; जो प्यासा हो, उसे पानी,
जो नंगा हो उसे कपड़ा पिन्हाना धन की शोभा है।
जो दुखिया हो, तड़पता हो, सताया हो उसे झटपट,
उठाकर प्रम से हिय से लगाना धन की शोभा है।
अविद्या से समूचे देश में जो दुःख छाया है,
उसे शिक्षा-प्रचारक बन मिटाना धन की शोभा है।
हजारों गाय कटती हैं, हुआ है दूध-घी महँगा,
बिचारी गाय-माता को बचाना धन की शोभा है।
गरीबों की जो रोजी है, जो बेवों का सहारा है,
उसी खादी की उन्नति में लगाना धन की शोभा है।

मुझे इसमें बहुत स्वाभाविकता जान पड़ी। इसलिये मेरे हृदय से ये उद्गार निकल पड़े—

[कवित्त]

गुनि-गुनि ग्रन्थन तें शास्त्रन तें सुनि-सुनि
चुनि-चुनि बेदन तें बचन कहति है।

शुभ्र गीतसागर बिगाहि निज बाहुन तें
गाय शुभ गान तान आनँद लहति है।
सर्व-कला-कीलित सुकाव्य कल कानन तें
कलिका बटोरि सुधा-बिन्दु-सी बहति है।
गंगा परसाद सुख दिव्य कमलासन पै
बैठि नित भारती उचारती रहति है॥

[द्रुतविलम्बित छन्द]

यदि कछू रुचि है निज देश से, अरु कछू अनुराग स्वजाति से।
सदुपदेश-भरी सुखदा तबै, सुकविता सुनिये कवि 'गंग' की॥

[दोहा]

श्री गंगा परसाद की लम्बी-पतली देह।
गिरा नयन कज्जल करन स्वर्ण-सलाका एह॥

आपकी बनाई 'राष्ट्रीय मधुर वंशी' और महावीरी झंडा' नामक पुस्तकें छप चुकी हैं। 'यज्ञोपवीत-विधान', 'गायत्री-माहात्म्य' आदि अभी अप्रकाशित हैं।

[११] मौलवी अब्दुल मन्नान साहब, एम्० ए०

आप पटना कालेज में फारसी पढ़ाते हैं। इस विभाग के आप सीनियर प्रोफेसर हैं। बहुत ही सज्जन तथा निष्कपट मनुष्य हैं। सभी धर्मों को एक दृष्टि से देखते हैं। आपके हृदय में धार्मिक संकीर्णता नहीं है। फारसी-साहित्य के मर्मज्ञ हैं।
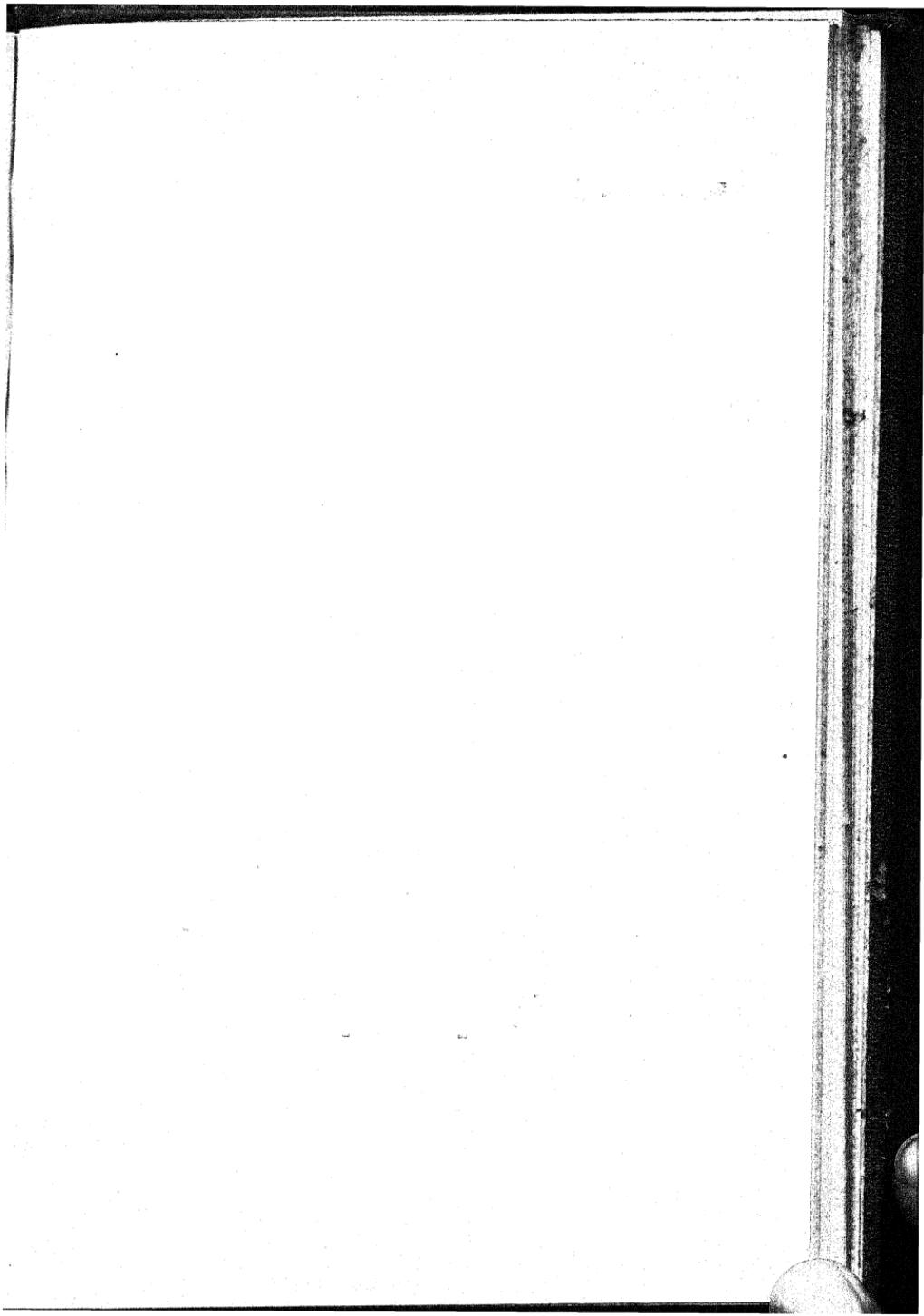
महामहोपाध्याय पांडेय सकलनारायण शर्मा
[पृष्ठ १२२]

[१२] बाबू हरेन्द्रनाथ गंगोली

आप ब्राह्मण हैं। आपका आचरण बड़ा पवित्र है। प्रतिदिन शालग्राम की पूजा करने के बाद जल ग्रहण करते हैं। निरामिष-भोजी हैं। बड़े ही नम्र, ब्राह्मणभक्त, लोकोपकारी तथा मिष्टभाषी हैं। पटना-कालेज में प्रधान गणिताध्यापक हैं। आपके सरल स्वभाव से सभी प्रसन्न रहते हैं।

[१३] डाक्टर सुविमलचन्द्र सरकार, एम्० ए०

आप ब्राह्मधर्मावलम्बी हैं। बड़े ही मधुरभाषी, निरभिमान तथा उदार हैं। पटना-कालेज में सर्वप्रधान इतिहासाध्यापक हैं। आपका इतिहास-ज्ञान अगाध है। आपने इतिहास के अनेक गवेषणापूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। उनमें कितनी बातें आपके स्वतन्त्र स्वाध्यायी मस्तिष्क की उपज हैं। आपकी पढ़ाने की परिपाटी बड़ी सरल है—थोड़ा अँगरेजी जाननेवाला भी भलीभाँति समझ लेता है; आपकी अँगरेजी बहुत सहज होती है। आपका वचन-प्रवाह अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होता है। ऐसा बोलनेवाला प्रोफेसर बहुत ही कम देखने में आया। डाक्टर यदुनाथ सरकार, एम्० ए०, सी० आइ० ई० के स्थान की पूर्त्ति आपने भलीभाँति की है। उनका अभाव आप ही के रहने से किसी को नहीं अखरता।

[१४] मिस्टर आर० एफ० कूपर

न्यूकालेज (पटना) के प्रिंसपल होकर आप आये। मुझसे हिन्दी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मेरी पढ़ाई

से बहुत प्रसन्न हुए। स्वामी होकर भी मित्रता का व्यवहार करने लगे। 'आत्मगौरव' का पूरा ध्यान रखते थे। बड़े सहृदय थे।

[१५] रेवरेंड फ्रेडरिक काले

आप जब हिन्दुस्तान में आये तब हिन्दी बहुत कम जानते थे। इसलिये आपने श्रीमान् रेवरेंड डैन के द्वारा मुझे बुलाया और हिन्दी पढ़ना प्रारम्भ किया। कुछ दिनों के बाद पूरे मित्र का-सा व्यवहार किया और दस महीने के बाद देश-देशान्तर में व्याख्यान देने के लिये चले गये। हिन्दी अच्छी बोल लेते थे।

[१६] महामहोपाध्याय पंडित सकलनारायण पांडेय

आप संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् हैं। व्याकरण, काव्य और सांख्य के तीर्थपरीक्षोत्तीर्ण हैं, इसलिये सब लोग आपको 'तीर्थत्रयी' कहते हैं। हिन्दी के धुरन्धर लेखक हैं। लगभग बीस-पचीस बरसों तक खड्गविलास प्रेस (बाँकीपुर) से प्रकाशित होनेवाली 'शिक्षा' नाम्नी साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादन किया है। 'आरा' नगर आपकी जन्म-भूमि है। आप सरयूपारीण ब्राह्मण हैं। आप ही के महोद्योग से 'आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा' का जन्म हुआ है। आप बिहार के गौरव-स्वरूप हैं। आपकी बहुज्ञता पर बिहार को बड़ा गर्व है। सबसे पहले आप ही के मस्तिष्क से अखिलभारतवर्षीय हिन्दीसाहित्यसम्मेलन का आयोजन करने का प्रस्ताव प्रसूत हुआ था, जिसे पंडित उमापतिदत्त शर्मा ने भी कुछ आगे बढ़ाया था; पर शर्माजी के अचानक मर जाने से वह आन्दोलन पट पड़ गया, जिसे फिर स्वनामधन्य बाबू श्यामसुन्दर

दासजी ने कार्य-रूप में परिणत कर दिखाया। मेरी ससुराल 'आरा' नगर के मिश्रटोला मुहल्ले में है। इसलिये आप जब मिलते हैं तब बड़ा विनोदपूर्ण वार्त्तालाप करते हैं। आप अवस्था में मुझसे कुछ बड़े हैं, किन्तु विद्या में बहुत बड़े हैं। आपने हिन्दी में बहुत-सी उपादेय पुस्तकें लिखी हैं। आप लगभग बीस साल से कलकत्ता-विश्वविद्यालय में संस्कृताध्यापक हैं। संस्कृत, हिन्दी और बँगला में धाराप्रवाह व्याख्यान देते हैं। बड़े सरल, हँसमुख और अनन्य शिवभक्त हैं।

[१७] पंडित ईश्वरीप्रसाद मिश्र

आप मिश्रटोला (आरा) के रहनेवाले शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। आपका जन्म हिन्दी के परम प्राचीन सर्वप्रथम गद्य-लेखक पं० सदल मिश्र के वंश में था। आप बाल्यावस्था से ही प्रतिभाशाली थे। आइ० ए० तक आपकी शिक्षा हुई थी। वर्त्तमान 'सरस्वती'-सम्पादक पंडित देवीदत्तजी शुक्ल आपके सहपाठी हैं। आरा-निवासी प्रसिद्ध साहित्यानुरागी स्वर्गीय कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन भी आपके सहपाठी थे। ये तीनों काशी के सेंट्रल हिन्दू-कालेज में पढ़ते थे। बँगला और गुजराती तथा मराठी भाषाओं के भी आप अच्छे ज्ञाता थे। बँगला में भी आपके लिखे कई ग्रन्थ हैं। हिन्दी में तो आपने थोड़ी ही अवस्था में ऐसा नाम पैदा किया जैसा दूसरे लोग साठ-सत्तर वर्ष की अवस्था में भी नहीं कर पाते। आप सम्बन्ध में मेरे श्यालपुत्र होते थे, तथापि मेरे साथ विनोदपूर्ण वार्त्तालाप करने में नहीं सकुचते थे। आपने सर्वप्रथम महात्मा बुद्धदेव पर एक लेख लिखा जिसको मैंने शुद्ध करके निज-

सम्पादित 'अवधकेशरी' में प्रकाशित किया। उसी समय मैंने जान लिया कि आप एक नामी लेखक होंगे। आपके कई लेखों को मैंने 'अवधकेशरी' में प्रकाशित किया था। कुछ दिनों के बाद आपने आरा से 'मनोरञ्जन' नामक सचित्र मासिक पत्र निकाला, जो सर्वाङ्गसुन्दर था। आपके लिखे तथा अनुवादित किये अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। आपने कई पत्रों के सम्पादन-विभाग में योग्यता के साथ कार्य किया था। अन्त में 'हिन्दूपञ्च' (कलकत्ता) का बड़ी योग्यता के साथ सम्पादन करके हिन्दी-संसार में बड़ा नाम पैदा किया। हिन्दी के दुर्भाग्यवश आपका वहीं युवावस्था में ही स्वर्गवास हुआ। बहुत दिनों तक 'हिन्दूपंच' में ईश्वरी-स्मृति-स्तम्भ प्रकाशित होता रहा। आप अच्छे वक्ता और कुशल अभिनेता भी थे। आपका व्याख्यान बड़ा ही विनोदपूर्ण होता था। आप हिन्दी और संस्कृत में हास्यरस की अच्छी कविता करते थे। श्रीशिवपूजनसहाय आप ही के साहित्यिक शिष्य हैं।

[१८] बाबू परमेश्वर दयालु

आपका जन्म विक्रम-संवत् १९३३ के माघ मास में हुआ। डुमरावँ-राजधानी के तमोलियों में आपका घराना प्रतिष्ठित समझा जाता है। पिता का नाम धनीराम और चाचा का नाम जगप्रसाद—ये दोनों अपने समय में बड़े प्रतिष्ठित समझे जाते थे—दोनों ही रामभक्त और रामायण, विनयपत्रिका, तुलसी-सतसई आदि ग्रंथों के बड़े बोद्धा माने जाते थे ; इनके घर में गल्ले का कारबार होता चला आया है।

आप प्रतिभाशाली जन्मसिद्ध कवि हैं। आप अपना नाम हिन्दी-कविता में 'परमेश' और उर्दू-कविता में 'रसिक' रखते हैं। उदाहरण—

[घनाक्षरी]

गौर करि दीने ज्यों सुठौर बहु पापिन को,
देत क्यों न त्योंही 'परमेस' हू बिचारे को।
सिगरी तू जाने बात जिगरी कहाँ लों कहौं,
बिगरी हमारी बिन रावरे सुधारे को।
एहो रघुराज बूझि परत न मोको कछू,
कारन सु कौन आज मूँदि लेत द्वारे को।
कैधौं कछु खीझे हो बिलोकि अघखानि मोहि,
कैधौं तजी बानि अब अधम उधारे को ॥१॥
एहो रामचन्द्र ये चकोर 'परमेस' तेरो,
रावरे अछत केती बिपद सहा करै।
पातकी बिलोकि दौरि देत हैं किवार सबै,
दुख सुनिबे को कोऊ सुख तें न हाँ करै।
घर कहुँ दीजै जहँ दीन्हें गीध सेवरी को,
फरकहु देखि मोहि नरकहु ना करै।
अरज हमारी सुनि उजर न कीजै नाथ,
आपी कहो पापी जन गुजर कहाँ करै ॥२॥

[सवैया]

गुन एक न तोहि रिझाइबे को, गुनि याही हिया मुख मोरिये ना।
गिनती करि मेरो ही पाप घनो, बिनती यहै नाक सिकोरिये ना।
हरिजू गनिकादि तें जौन करी, वह बानि कृपा करि छोरिये ना।
'परमेस' ते पातकी पावन की बहु नातो लगायकै तोरिये ना ॥३॥
जो तोहि मोसे बिराग भयो तब अंग में राख लपेटे रहो।
रामजू काम न मो अघ तें, तुम पाँव पसारि कै लेटे रहो।
वा गनिका सेवरी को सदा, तुम नीके भुजा भरि भेंटे रहो।
माँगिहैं ना 'परमेस' कछू, तुम आपनो हाथ समेटे रहो ॥४॥

[गजल]

हमारे दिल के कूचे में निहायत तंग रस्ते हैं।
गजब है फिर वहाँ दो-चार पाकिटमार बसते हैं॥
मुझे सोने की फुर्सत है, न अब सोने से मतलब है।
हम ऐसे लुट गये दिल में न सीसे हैं न जस्ते हैं॥
बाजारे-मुहब्बत के खरीदारों से यह कह दो।
खरीदें आज दिल मेरा ये सस्ते से भी सस्ते हैं॥
'रसिक' रँग लाय होली में मुझे वह 'लॉ' दिखाते हैं।
हम बेअंदाज रोते हैं, वे बेअन्दाज हँसते हैं॥

मेरी शिष्य-श्रेणी

मैंने इस जीवन में चालीस वर्षों तक अध्यापन-कार्य किया। मेरे छात्रों वा शिष्यों की गिनती नहीं हो सकती। दो-चार मुख्य हैं—

[१] श्री जे० एच्० थिकेट, एम्० ए०

मैं न्यूकालेज (पटना) में काम करता था। पचहत्तर रुपये मासिक मिलते थे। अन्य प्रोफेसर डेढ़ सौ पाते थे। १९२० ई० में तीन यूनिवर्सिटी-इन्स्पेक्टर आये—डी० एन्० सेन, (प्रिंसपल, बी० एन्० कालेज, पटना) एन्० एन्० राय (प्रिंसपल, टी० एन्० जुबली कालेज, भागलपुर), रेवरेंड फारेस्टर (प्रिंसपल, कोलम्बस कालेज, हजारी-बाग)। इन लोगों ने मेरा मासिक एक सौ कर देने के लिये लिखा। पर कुछ नहीं हुआ। भगवान् की कृपा से १९२१ ई० में थिकेट साहब यूनिवर्सिटी-इन्स्पेक्टर होकर आये। आपने लिखा कि इनकी तनखाह भी सभी प्रोफेसरों के बराबर डेढ़ सौ कर दी जाय और १९२० ई० से ही जोड़कर पुरानी तनखाह १५०) के हिसाब से दी जाय। फिर क्या था, एक महीने के भीतर नौ सौ रुपये इकट्ठे मिल गये और तनखाह भी १५०) हो गई। मैं थिकेट साहब को धन्यवाद देने के लिये गया। उन्होंने कहा—यह आपकी गुरु-दक्षिणा है। मुझसे पढ़ने के समय उन्होंने ३०) मासिक दस महीने तक दिया था। इसके अतिरिक्त मैं पटना-यूनिवर्सिटी का मैट्रिक, आइ० ए०, बी० ए० और एम० ए० का जो परीक्षक सदा होता रहा, वह भी उन्हीं की महिमा का फल था। एग्जामिनेशन-बोर्ड, बोर्ड आफ स्टडी आदि का जो मेम्बर मैं हुआ, उसमें भी उन्हीं का उद्योग प्रधान था।

[२] डब्लू० डब्लू० टी० मूर

आपको कुछ दिनों तक पढ़ाया था। आप मेरे बड़े ही आज्ञाकारी थे।

[३] ई० एल्० प्रेस्टन्, एम्० ए०

उस समय बिहार का शिक्षा-विभाग कलकत्ता-विश्वविद्यालय के अधीन था। समूचे बिहार का एक ही इंस्पेक्टर रहता था, असिस्टेंट इन्स्पेक्टर अनेक रहते थे।

इनको भी दस महीने तक मैंने पढ़ाया था। जब ये असिस्टेंट डाइरेक्टर होकर कलकत्ता गये, उस समय इन्होंने मेरे पास पत्र लिखा कि आप कलकत्ता चले आइये, अच्छी नौकरी दिलवा दूँगा—जबतक नौकरी नहीं दिलवा सकूँगा तबतक ३०) अपने पाकेट से दूँगा; मेरे साथ रहियेगा। इनको दूर रहने पर भी सदा मेरी चिन्ता बनी रहती थी। अत्यन्त दुःख है कि कुछ महीनों के बाद ही घोड़े से गिरने के कारण इनका परलोकवास हो गया। ये हिन्दुस्तानी चाल-ढाल को बहुत पसंद करते थे। घर में जब रहते थे तब मखमली काले कोर की धोती पहनते थे। सबसे हिन्दी में ही बातचीत करते थे।

[४] बाबू आनन्दप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०

पटना-हाइकोर्ट के आप ऐडवोकेट हैं। आपने समय-समय पर मेरी बड़ी सहायता और सेवा की है। आप चारों भाई मेरे शिष्य हैं और सभी मेरी भक्ति करते हैं। आपके पिताजी ने, जिस समय मेरे घर में चोरी हुई थी, एक महीने के भीतर ६०) देकर बड़ी सहायता की थी; २५) तो उसी दिन भेज दिये थे। ये लोग अपने पारिवारिक मनुष्य का-सा व्यवहार करते हैं।

स्वर्गीय मिश्र ईश्वरीप्रसाद शर्मा

[पृष्ठ १२३]
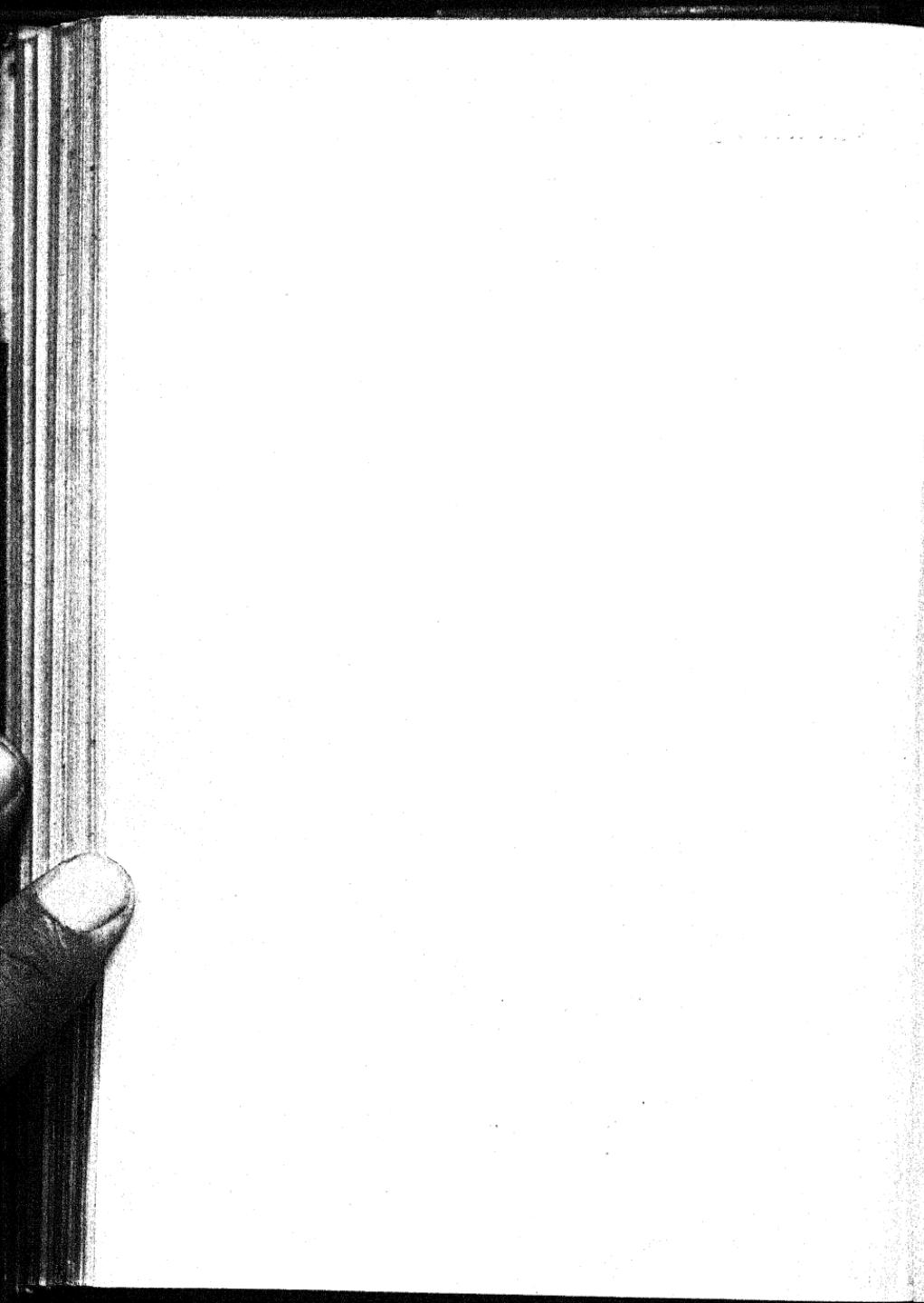
[५] श्रीधर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री एम्० ए० काव्यतीर्थ विशारद प्रोफेसर, पटना-कालेज। आपकी प्रीति तथा भक्ति प्रशंसा के योग्य है। आप इतना बड़ा पद पाकर भी वही भाव रखते हैं जो भाव पढ़ने के समय रखते थे। आप ही कालेज में मेरे स्थान पर रखे गये हैं जिससे मुझको बड़ा सन्तोष हुआ है।

[६] बाबू विश्वनाथसिंह, बी० ए०, बी० एल्०

वकील हैं। समय-समय पर मुकदमे में बड़ी सहायता करते हैं। आपका समस्त परिवार मेरे अपने परिवार के समान व्यवहार करता है। सच्चे शिष्य हैं। दीर्घायु हों।

[७] बाबू हरिहरनाथ गुप्त

डुमरावँ में सबसे धनीमानी रौनियार-वैश्य-वंश की एक—'व्रज-मोहनराम प्रयागराम' के नाम से—गद्दी (फार्म) है। स्वर्गीय व्रज-मोहनरामजी के प्रथम स्वर्गीय पुत्र बाबू द्वारकाप्रसादजी के आप चतुर्थ पुत्र हैं। आपका जन्म विक्रम-संवत् १९६८ में कार्त्तिक शुक्ल पूर्णिमा को हुआ। आप बड़े ही हास्यप्रिय मनुष्य हैं। दूकान का काम भी करते हैं और कविता भी। उदाहरण—

आँख की लगी को तुम दिल्लगी न समझो, इस
तीर के घायल का मुमकिन नहीं कि जी ले।
फुर्सत नहीं दे इतनी, गो-दान भी करा ले
खोल करके मुँह को तुलसी-गंगाजल पी ले॥

अबतक नहीं है पैदा डाक्टर हकीम जो इस
तीर के जख्मों को टाँका लगा के सी ले।

बढ़कर है इस जहाँ में हिटलर मुसोलनी से
परवा नहीं किसी की, जब नैन हैं रसीले ॥१॥

टैंक औ तोप बेकार हुए अब छूरे कटार नहीं हैं कटीले।
बर्छी औ भाले में ताले पड़े, सब युद्ध के पोत पड़े नित ढीले ॥
तीर कमान के बीत गये दिन, गोली बारूद भये सब गीले।
होयगा युद्ध जहाँ अबकी, सब छाँट के जायँगे नैन रसीले ॥२॥

कहीं लाठी चली, कहीं मार पड़ी, कहीं नष्ट भई नगरी छन में।
कहीं बालक-बृद्ध भुनाय गये, कहीं चूक गई गोली 'गन' में ॥
जब भारत-माता ताक थकी, मम पूत कपूत सभी जनमे।
तब भारत-लाज-उबारन को, सब बीर बधू निकलीं रन में ॥३॥

मेरे मन-मंदिर की देवी तू बन जा प्रिये,
तेरी चरन-धूलि लगाऊँ निज नैन में।
तेरी जपमाली ले तेरा सदा नाम जपूँ,
स्वप्न में भी देखूँ छबि तेरी नित्य रैन में।
मेरे लिये तू बने स्वर्ग नरक सुबह साम,
तेरा गुन-गान मुझे भावे हर बैन में।
दरसन में देरी तेरे हो जा दिन-भर कहीं,
इंजन के नीचे कटूँ जाके बड़ी लैन में ॥४॥

मेरी ग्रन्थावली *

[स्वतन्त्र संस्कृत-ग्रन्थ]

[१] **राधामाधव-विलास**—इसमें ५२५ (पाँच सौ पचीस) संस्कृत के दोहा-छन्दोवद्ध पद्य हैं। अठारह संस्कृत के मनोहर, षट्पदी आदि छन्दोवद्ध पद्य हैं। यह ग्रंथ कलकत्ता-निवासी सेठ रूड़मल गोयनका की सहायता से बड़ी सुन्दरता के साथ प्रकाशित हुआ था। इसमें ग्रंथकार का चित्र भी है। विषय तो नाम ही से प्रकट हो जाता है।

[२] **स्तोत्र-कुसुमाञ्जलि**—इसमें ६७ वियोगिनी छन्दोवद्ध पद्य हैं जिनमें श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति है। यह पुस्तक विशुद्धानन्द-सरस्वती-बिद्यालय के प्रिंसपल स्व० पांडेय उमापतिदत्त शर्माजी की सहायता से छपी थी।

[३] **पद्यपुष्पोपहार**—इसमें अनेक प्रकार के छन्दोवद्ध २६ पद्य हैं जिनमें मेरे विद्यादाता तथा दीक्षागुरु स्वर्गीय पंडित चन्द्रमणि शर्माजी की स्तुति है। यह भी उक्त पांडेय उमापतिदत्तजी की सहायता से छपी थी।

---

* मेरे ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय मेरी 'लेखमणिमाला' नामक पुस्तक में भी प्रकाशित है। यह पुस्तक भी 'पुस्तक-भंडार' (लहेरियासराय) से निकली है।

[४] कृष्ण-कीर्त्तन—इसमें एक सौ पद्रह संस्कृत-दोहा-छंदोवद्ध पद्य हैं। उनका अनुवाद व्रजभाषा के दोहा-छन्दों में किया गया है। दोनों भाषाएँ ग्रंथकार ही की रचना हैं। इसके बहुत-से अंश 'सरस्वती' में भी छपे हैं। पुस्तकाकार 'पाठशाला प्रेस' (पटना) से प्रकाशित है।

[५] विनयमालिका—इसमें संस्कृत के अठारह पद्य हैं जिनमें संक्षेप से रामायण और भागवत की कथा है।

[६] शोकसूक्ति—इसमें ३५ वियोगिनी छन्द के पद्य हैं जिनमें ग्रन्थकार ने अपने पिता के स्वर्गवासी होने पर बड़ी करुणा के साथ विलाप किया है।

स्वतन्त्र हिन्दी-गद्य-ग्रन्थ

[१] दुर्गादत्त परमहंस—यह एक गद्यात्मक हिन्दी-काव्य है जिसमें अद्वितीय विद्वान् योगी महात्मा दुर्गादत्त परमहंसजी का जीवन-चरित्र लिखा गया है। प्रकाशक, पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

[२] उपदेश-रामायण—इसमें संक्षिप्त रामायण-कथा है, किन्तु वाल्मीकीय रामायण तथा तुलसीकृत रामायण में जितने उपदेश हैं उनका पूर्ण अनुवाद इसमें दिया गया है। यह बिहार के शिक्षा-विभाग में स्वीकृत है। पटना के

खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित है। इसमें २२१ पृष्ठ हैं।

[३] **दशावतार-कथा**—इसमें भगवान् के दशावतारों की कथा संक्षेप से लिखी गई है। महाकवि क्षेमेन्द्र-रचित दशावतार-कथा की छाया से यह ग्रंथ तैयार किया गया है। इसमें १४४ पृष्ठ हैं। यह भी खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित है।

[४] **लेख-मणि-माला**—मेरे साहित्यिक निबंधों का संग्रह है। 'पुस्तक-भंडार' (लहेरियासराय) से प्रकाशित है। गद्य-पद्य-मिश्रित है।

[५] **आत्मचरित-चम्पू**—यही पुस्तक आपके हाथ में है। रोगशय्या पर संवत् १९९४ में लिखी गई है। इसका प्रत्येक अक्षर शुद्ध मन से लिखा गया है। यही मेरी अन्तिम रचना है।

स्वतन्त्र हिन्दी-पद्य-ग्रन्थ

[१] **आनन्दकुसुमोद्यान**—इसमें मनहरण, घनाक्षरी, सवैया आदि छन्दों के १४८ पद्य हैं जिनमें श्रृंगार रस की अनूठी छटा देख पड़ती है। यह ग्रथ बी० एल० प्रेस (कलकत्ता) से प्रकाशित हुआ था।

[२] सदा-बहार—इसमें अनेक प्रकार के गीत हैं जिनमें शृंगार रस का वर्णन है। यह ग्रंथ कलकत्ता के 'कलीमी लीथो प्रेस' में छपा था।

[३] लार्ड हार्डिञ्ज का स्वागत—इसमें दस पद्य हैं। यह खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित हुआ था।

संस्कृत से हिन्दी में अनुवादित ग्रंथ

[१] मार्कण्डेय-पुराण—इसी पुराण का हिन्दी में यह अविकल अनुवाद है। इसमें ४८० पृष्ठ हैं। यह 'भारत-मित्र प्रेस' (कलकत्ता) से प्रकाशित है।

[२] दशकुमार-चरित-सार—इसमें हिन्दी में महाकवि 'दंडी'-कृत 'दशकुमार-चरित' की संक्षिप्त कथा है। इसमें ८४ पृष्ठ हैं। यह 'भारतमित्र प्रेस' (कलकत्ता) से प्रकाशित है। इसके दो संस्करण हो गये।

बँगला से हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ

[१] देवी चौधुरानी—वंग-साहित्य-सम्राट् वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय-रचित 'देवी चौधुरानी' (उपन्यास) का हिन्दी-अनुवाद। प्रकाशक, खड्गविलास प्रेस (पटना)।

[२] मृणालिनी—यह भी वंकिमचन्द्र की बँगला 'मृणालिनी' का

हिन्दी-अनुवाद है। प्र०—ख० वि० प्रेस, पटना। (उपन्यास)

[३] **रजनी**—यह भी वंकिमचन्द्र की बँगला 'रजनी' (उपन्यास) का हिन्दी-अनुवाद है। यह भी उक्त खड्ग-विलास प्रेस से प्रकाशित है।

संस्कृत-पद्य का हिन्दी-पद्यानुवाद

[१] **शिवमहिम्नस्तोत्र**—संस्कृत के पद्य शिखरिणी-छंदों में हैं। हिन्दी-अनुवाद भी उसी छंद में है। यह पुष्पदन्ताचार्यकृत है। मुरादाबाद के सनातन-धर्म प्रेस से प्रकाशित हुआ था।

[२] **शिवतांडव**—संस्कृत के पद्य चामर-छन्दों में हैं, हिन्दी-अनुवाद भी चामर-छन्दों में ही है। यह रावण-कृत है। स० ध० प्रेस, मुरादाबाद।

[३] **गंगा-लहरी**—संस्कृत के पद्य शिखरिणी-छन्दों में हैं। हिन्दी के पद्य भी उन्हीं छंदों में हैं। मूल ग्रन्थ पंडितराज जगन्नाथकृत है। पुस्तक-भंडार (लहेरियासराय) से सचित्र प्रकाशित है।

[४] **गंगाष्टक**—इसका भी पद्यानुवाद ही है। मूल ग्रंथ महर्षि वाल्मीकि-रचित है। यह ग्रंथ और 'गंगा-लहरी' दोनों पहले सनातन-धर्म प्रेस (मुरादाबाद) में छपे थे। अब यह

'गंगाष्टक' उपर्युक्त 'गंगा-लहरी' में ही सम्मिलित होकर 'पुस्तक-भंडार' (लहेरिया-सराय) से प्रकाशित है।

इनके अतिरिक्त मेरे लेख तथा काव्य समय-समय पर सरस्वती, माधुरी, सुधा, मनोरमा, गंगा, मनोरंजन, धर्माभ्युदय, बालक आदि मासिक पत्र-पत्रिकाओं तथा पाटलिपुत्र, भारतमित्र, हिन्दी-बंगवासी, वेंकटेश्वर-समाचार, शिक्षा आदि साप्ताहिक पत्रों में छप चुके हैं। यदि ये सब एकत्र पुस्तकाकार में प्रकाशित हों तो सैकड़ों पृष्ठ में छपेंगे। और भी अनेक अप्रकाशित पुस्तकें हैं। यदि श्रीराधानाथ की कृपा होगी तो वे भी प्रकाशित हो जायँगी। तथास्तु श्रीकृष्णप्रसादात्।

स्व-रचित ग्रंथों से उद्धृत उदाहरण

[१]

जलधर जलभरवर्षैरपहर भूदहनं च।
नोचेदपसर दूरतस्त्यज हिमकरकिरणं च ॥१॥
अरे मुरलिके किन्तपः कृतवत्यसि कठिनं च।
हरेरधररस मा पिबसि सदा तापशमनं च ॥२॥

—(राधामाधवविलास)

[२]

पीतवसनमति सुन्दरं हरेर्मदनकदनस्य।
भाति यथा सौदामिनी मध्ये नीलघनस्य ॥

× × ×

मदन-मान-हर कृष्ण को पीलो वसन सुहाय ।
जैसे काले मेघ में लसत बिज्जु समुदाय ॥

卐 卐 卐

अधियामिनि गजगामिनी सौदामिनीव भासु ।
व्रजति व्रजेशं कामिनी मेघाच्छन्ननिशासु ॥

× × ×

रैन माँह गजगामिनी करत तड़ित-सी भास ।
अति अँधियारी रैन में चली जाति हरि पास ॥

—(कृष्ण-कीर्त्तन)

[३]

स्तवनं मम नीरसं प्रभो अपि ते हर्षकरं भविष्यति ।
जनकस्य मुदावहं वचो मृदुबालेरितमप्यनर्थकम् ॥

—(स्तोत्रकुसुमाञ्जलि)

[४]

हसतिकाव्य सुकाव्यचमत्कृतिं गुरुगुरोर्गुरुवाक्पटुतामपि ।
विगतदोषपदार्थविभूषिता सुबुधचन्द्रमणेर्नववाग्मिता ॥

—(पद्य-पुष्पोपहार)

[५]

श्रीकृष्णः कमलापतिः कमलदृक् कंसान्तकः केशवः ।
कान्तः कैटभजित् कृपाजलनिधिः कालीयसम्मर्दनः ।

कामाहङ्कृतिनाशनश्च करुणाकायः कपालिप्रियः ।
कल्याणं कुरुतां कुबुद्धिकदनः कल्याणदः कामदः ॥

—(*विनय-मालिका*)

[६]

शिवपादयुगे सुदुर्लभा त्वया भक्तिरकृत्रिमा स्थिता ।
भुवि सा प्रकटीकृता त्वया ननु काश्यां मरणात्सुदुर्लभात् ॥

—(*शोकसूक्ति*)

[७]

एरी प्यारी क्वैलिया तू औरहु कछूक दिन
बोलहु न एको बार होय रहु मूकै री ।
आयो री बसंत पै न आयो 'बिप्रचन्द' कन्त
या तें बिरहागिहू की लागत है लूकै री ।
सोचि-सोचि याही बात सूखत हमारो गात
तेरो मृदु बैन सुनि औरो होत हूकै री ।
अरज हमारी मानि दरद हिये में आनि
मोहि अति दीन जानि अब जिन कूकै री ॥१॥
मृगमद लेप लाय अम्बर लगाय पुनि
तूलन उढ़ाय और तापन बढ़ाउ री ।
परदे बनातन के डारि द्वारद्वारन में
सीरे पौन रोकि अब ज्वालन जगाउ री ।
'बिप्रचन्द' सीतल गुलाबजल सींचि-सींचि
पंकज के पातन को पलँग बिछाउ री ।

आली बिरहागि जोर जारत हमारो अंग
या तें सब रोम-रोम चन्दन लगाउ री ॥२॥
—(*आनन्द-कुसुमोद्यान*)

[८]

जटाकटाहसम्भ्रमं भ्रमन्निलिम्पनिर्झरी ।
विलोलवीचिवल्लरी विराजमान मूर्द्धनि ।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्ट पावके ।
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥

× × ×

महेश की जटान में लसे सुगंगधार है ।
सुगंग की तरंग में छुटा दिखे अपार है ।
ललाट में दिखात ज्वाल अग्नि की महान है ।
सुचन्द्रचूड़ में सदा बसै हमार प्रान है ॥
—(*शिवतांडव*)

[९]

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराः ।
चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं ।
तथापिस्मर्तॄणां वरद ! परमं मंगलमसि ॥

× × × ×

मसानों में खेलै करत नित ही प्रेत सँग में ।
चिताधूली लेपै मनुज-सिर की माल पहरे ।

तिहारी ये बातें असुभ अति ही जान पड़तीं ।
तऊ तू देता है भगत-जन को मंगल महा ॥

—(*शिवमहिम्न*)

[१०]

वज्रं पापमहीभृतां भवगदोद्रेकस्यसिद्धौषधं ।
मिथ्याज्ञाननिशाविशालतमसस्तिग्मांशुबिम्बोदयः ॥
स्फूर्जत्क्लेशमहीरुहासुरतरुज्वालाजटालः शिखी ।
द्वारं निर्वृतिसद्मनो विजयते कृष्णेति वर्णद्वयम् ॥

× × × ×

पाप-पहार को बज्र-समान अहै भवरोग-महौषध-आकर
झूठ महाभ्रम रैनहु के अँधियार बिसालहु को है प्रभाकर
फैल्यो बड़ो दुख-बृच्छहु को अहै पावकज्वाल समान उजागर
मुक्ति के द्वार-कपाट-समान बिराजत कृष्ण अहै जुग आखर

—(*भामिनी-विलास*)

दशम अध्याय

मेरे अनुभव

विमल तड़ित-सी राधिका, स्याम जलद-सम स्याम।
मेरे हिय - नभ में रहें, सदा जुगल छबिधाम॥

(१) ईश्वर सत्य और एक है। वह निराकार है, पर कभी-कभी भक्त-हितार्थ साकार भी हो जाता है। उसी की सत्ता से यह ब्रह्मांड स्थिर है। सब धर्मों में वैष्णवधर्म अच्छा है। श्रीराम और श्रीकृष्ण के चरित बड़े मधुर हैं। यदि वैष्णवधर्म अरुचिकर जान पड़े तो शैवधर्म का अवलम्बन करना ठीक है।

(२) वर्त्तमान संसार में निःस्वार्थ प्रेम कोई नहीं करता। सभी स्वार्थी हैं। स्वार्थमय संसार है।

(३) आजकल किसी को ऋण देना ठीक नहीं। यदि देना भी

हो तो अपने सम्बन्धियों को न देना चाहिये। इस युग में विना कागज लिखाये ऋण देना पानी में फेंकना है।

(४) स्त्री ही के शरीर से सब संसार है। स्त्री के साथ रहकर कोई विरागी नहीं हो सकता। स्त्री से बढ़कर दूसरा कोई बन्धन नहीं है। स्त्री ही की बातें मानकर लोग पिता-माता भाई-बन्धु सबसे अलग हो जाते हैं। यदि स्त्री अच्छी हो तो संसार सुखमय है, नहीं तो भयंकर नरक है। विवाहित पुरुष कभी नहीं पढ़ सकता ; इसलिये पढ़ने के बाद विवाह होना ठीक है।

(५) स्त्री और पुरुष दोनों का पुनर्विवाह होना चाहिये ; नहीं तो अनेक प्रकार के अनर्थ होते हैं। सजातीय पुरुष से स्त्री का पुनः विवाह और सजातीय विधवा से पुरुष का पुनर्विवाह हो तो अत्युत्तम है। क्वाँरे से ही क्वाँरी का विवाह होना ठीक है। दोनों की अवस्था समान हो अर्थात् पुरुष से स्त्री की अवस्था चार वर्ष छोटी हो ; इससे विपरीत होने से पूरी प्रीति नहीं होती। पर-स्त्री-गमन से बढ़कर नीच कर्म दूसरा नहीं है। स्वकीया का प्रेम सच्चा और सदा एक प्रकार निर्मल रहनेवाला है।

(६) माता से बढ़कर दयावती इस संसार में कोई नहीं है। उसी का प्रेम निःस्वार्थ और सच्चा है। वह संतान के लिये जितना कष्ट सहती है उतना कोई नहीं सह सकता।

(७) सहसा किसी का विश्वास मत करो। अनेक बार अनेक प्रकार से परीक्षा करने के बाद विश्वास करो। बहुत-से लोग अपने दुष्ट चरित्र को बड़ी चतुरता से छिपाये रहते हैं।

(८) मित्र वही है जो विपत्ति के समय सहायता करे। मित्रता करना सहज है; पर निर्वाह करना कठिन है। इस युग में सन्मित्र दुर्लभ है।

(९) यदि मन ही नहीं पवित्र है तो तीर्थ-व्रत पूजा-पाठ सभी व्यर्थ हैं। मन सच्चा, कठौत गंगा।

(१०) दया से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। दरिद्रों का पालन-पोषण करना बहुत बड़ा धर्म है। समर्थ को दान देना व्यर्थ है। दोनों में अन्नदान सर्वोत्तम है।

(११) दरिद्रों को उन्नत दशा में पहुँचानेवाली केवल विद्या ही है।

(१२) अज्ञ के सामने कविता-पाठ ठीक नहीं है। यदि कविता का अर्थ सुननेवाले की समझ में न आवे तो पढ़नेवाले को हताश होना पड़ता है।

एक बड़े धनी वैश्य ने मुझसे कविता पढ़ने के लिये बड़ा आग्रह किया। साथ ही, यह भी कहा कि 'रसखानि' पढ़िये! शृङ्गार-रस की कविता सुनने का उनका अभिप्राय था। मेरी तनिक भी इच्छा नहीं थी कि मैं उनके सामने कविता पढ़ूँ। मैं जानता था कि वे बही-खाते का कीड़ा हैं। उनके घोर आग्रह से लाचार होकर पढ़ना पड़ा—

सकल सिंगार साजि संग लै सहेलिन को
सुन्दरि मिलन चली आनँदकन्द को।
कबि 'मतिराम' बाल करत मनोरथनि
पेख्यो परजंक पै न प्यारे नँदनन्द को॥

नेह ते लगी है देह दारुन दहन गेह
बाग को विलोकि द्रुम बेलिन के बृन्द को ।
चन्द को हसत तब आयो मुखचन्द अब
चन्द लाग्यो हसन तिया के मुखचन्द को ॥

सुनकर आपने फरमाया कि 'वाह-वाह, हनुमानजी ने लंका को खूब जलाया !,' मैं सुनकर बड़ा हताश हुआ और वहाँ से चल दिया चुपचाप । अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख !

एक दिन की बात है कि हमलोग कुछ मित्र इकट्ठे होकर बातचीत कर रहे थे । उसमें एक बड़े ही अभिमानी विद्वान् बैठे थे, जो हिन्दी और संस्कृत के साधारण विद्वान् थे । नायिका-भेद और अलंकार में उनकी प्रवीणता नहीं थी । सबके आग्रह करने पर मैंने निम्नलिखित कविता पढ़ी—

सम्पुटित जलज लड़ैती जल जात जब
कुमुद-कलाप मुकुलित दरसात है ।
मृग दृग सकल निहोरत रहत सिर
ढोरत कदम्ब कीर कोकिल नसात है ।
हृदेस नँद-नन्दन हेरत तिहारो मग
जगमग दीपित बिसाल बाल गात है ।
तृषित चकोर छबि छाकत रहत जब
चपल नखत-पति लखत लजात है ॥
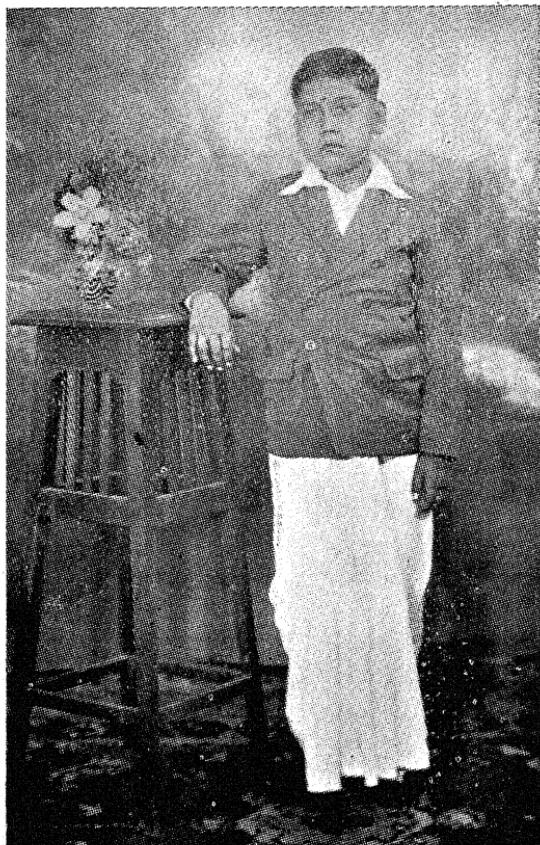
(लेखक के दौहित्र) श्रीनवलकिशोर मिश्र (बबन)

[पृष्ठ १४६]
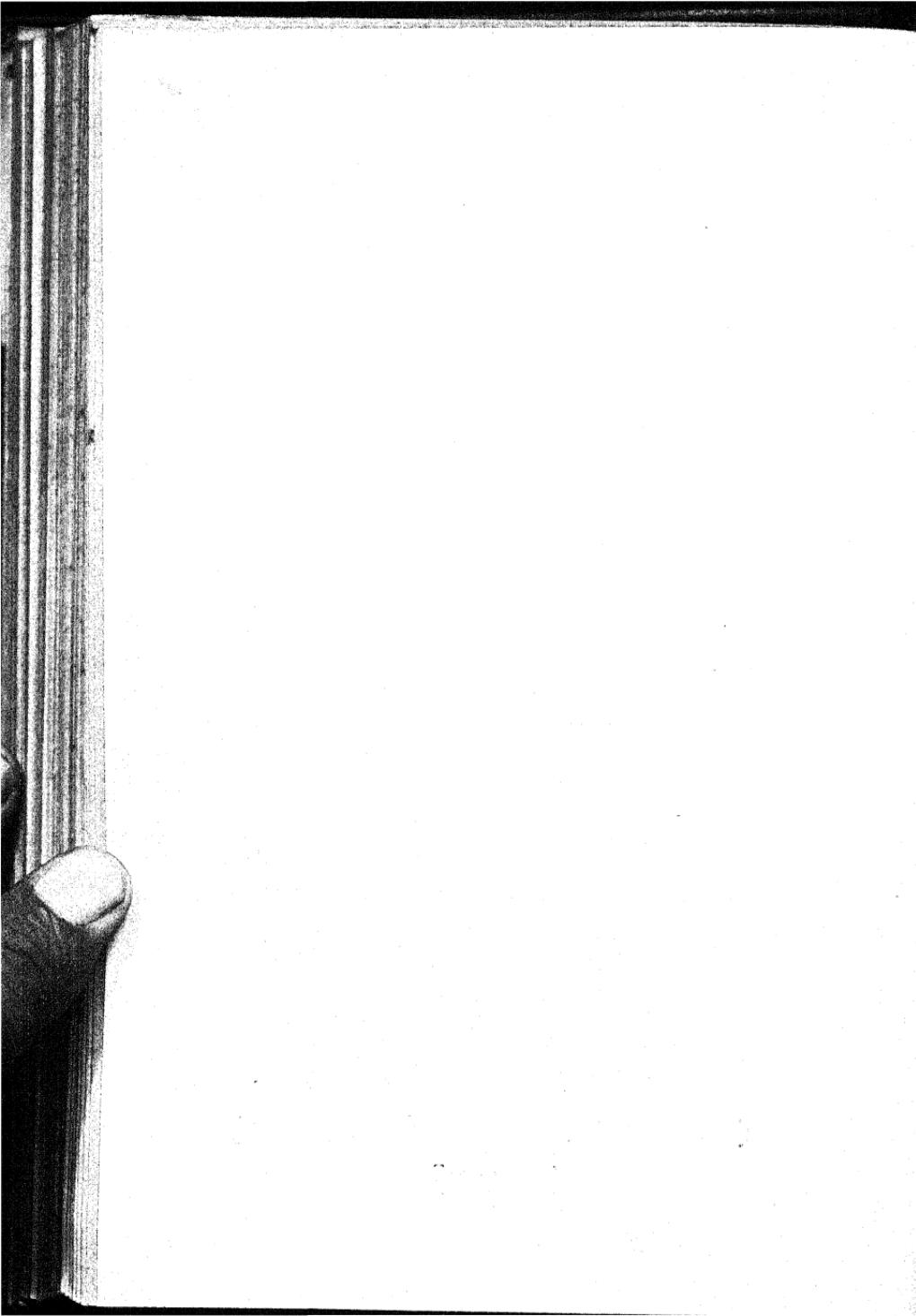
सब लोगों ने उस अभिमानी विद्वान् से पूछा—कहिये, इसमें कौन नायिका है ? आपने गर्व के साथ उत्तर दिया—इसमें नायिका नहीं है, अर्थात् नायक है ! मुझे चट हँसी आ गई जिससे पंडितजी नाराज होकर चले गये। अच्छा ही हुआ।

इस कविता में मानवती नायिका है। दूती वचन-चातुरी से नायिका का सौन्दर्य-वर्णन कर नायिका को प्रसन्न करना चाहती है। यह कविता उभयालंकार (शब्दार्थालंकार) का उत्तम उदाहरण है।

(१३) मनुष्य उत्तम ग्रंथ बनाकर अमर हो सकता है। प्रकाशकों से पूर्ण पुरस्कार पाकर ग्रंथकार उत्तम ग्रंथ लिखते हैं। इसलिये उदार प्रकाशक ही उत्तम साहित्य-निर्माण में सच्चे सहायक हो सकते हैं।

(१४) संस्कृत-साहित्य में व्यास, वाल्मीकि और कालिदास सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। हिन्दी में तुलसी, सूर और देव सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

(१५) सभी देशों और सभी भाषाओं में उत्तम-उत्तम कवि होते हैं। कविता में भाव ही प्रधान हैं, भाषा नहीं। 'अर्थ अनूठो चाहिये भाषा कोऊ होय' —(हरिश्चन्द्र)

[मेरे मनोगत भाव]

(१) मेरी अनन्य श्रद्धा और भक्ति, प्रथम श्रेणी की, सर्वशक्तिमान् वृन्दावन-विहारी राधाप्राणवल्लभ नन्दनन्दन यशोदामनोरंजन श्रीकृष्ण के चरणों में है। द्वितीय श्रेणी की भक्ति अयोध्याधिपति दशरथनन्दन कौसल्याहृदयचन्दन मर्यादापुरुषोत्तम जानकीजीवन श्रीरामचन्द्रजी के

चरणों में है। तृतीय श्रेणी की भक्ति अपने जीवनदाता भाग्यविधाता जङ्गमतीर्थ सर्वप्रकाराराध्य कैलासवासी पूज्यपाद पिताजी के चरणों में है।

मेरा स्वभाव परम दयालु है। अपने परिवार में मेरा परम स्नेह है। सभी को अत्यन्त प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ। तथापि अकृत्रिम स्वभाव तथा अनिर्वचनीय कारणों से अपनी धर्मपत्नी पर तथा अपने दौहित्र नवलकिशोर (बबन) पर और सर्वप्रकारसेवक और आज्ञाकारी अपने भ्रातुष्पुत्र जगन्नाथ (बुचकुन) पर मेरा विशेष प्रेम है।

[दोहा]

श्रीराजेश्वरमिश्र-सुत द्विज अक्षयवट नाम।
आत्मकथा अति लघु लिख्यो बुधपाठक-सुखधाम॥
रे मन, जौं जग सौं डरसि, तौ सबही तजि काम।
साँचो सुखहित जपु सदा, राधा-हरि को नाम॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु। शुभम्भूयात्।

उपसंहार

यह पुस्तक विक्रम-संवत् १९९४ के श्रावण-मास ही में लिखी गई; किन्तु अनेक अनिवार्य कारणों से अबतक प्रकाशित न हो सकी। इसलिये उस समय जो घटना भविष्यत् के गर्भ में थी वह अब वर्त्तमान में हो गई। कुछ ऐसी घटनाओं की स्पष्ट चर्चा कर देना आवश्यक जान पड़ता है। कुछ स्फुट बातें और भी हैं—

[१] उस समय डुमरावँ के वर्त्तमान महाराज ने जो जनाना-अस्पताल बनवाना प्रारम्भ किया था वह पूरा हो गया। बिहार के माननीय गवर्नर महोदय ने उसका उद्‌घाटन किया। अब वह सुचारु रूप से चल रहा है। उससे प्रजा का बहुत बड़ा उपकार हो रहा है। (देखिये पृष्ठ २३)

[२] वर्त्तमान महाराज ने हाल ही में अपने स्वर्गीय पिता (महाराज केशवप्रसादसिंह) की श्वेतपाषाणमयी मूर्त्ति श्वेतपाषाणमय मन्दिर में स्थापित की है, जिसमें पचासों हजार रुपये खर्च हो गये हैं और किले की शोभा चौगुनी हो गई है। यह सुन्दर पुरुष-प्रमाण मूर्त्ति (स्टेचू) इटली से बनकर आई है। इसका भी उद्‌घाटन बिहार के माननीय गवर्नर महोदय ने ही किया है। वर्त्तमान महाराज बड़े मातृ-पितृ-भक्त हैं।

[३] उस समय मेरी पूजनीया माताजी जीवित थीं; किन्तु अब इस लोक में नहीं हैं। विक्रम-संवत् १९९५ में पौष शुक्ल पंचमी

(सोमवार) को, ९६ वर्ष की अवस्था में, उनका स्वर्गवास हो गया। (देखिये पृष्ठ ४२)

[४] मेरे 'वंश-परिचय' में मेरे चचेरे बड़े भाई पंडित विश्वनाथ मिश्रजी के बाद वंश-परिचय छोड़ दिया गया है। (देखिये पृष्ठ ३५) विश्वनाथ मिश्रजी के बड़े पुत्र जगन्नाथ मिश्र हैं, जिनकी शिक्षा मैट्रिक तक हुई है—इस समय डुमरावँ-राज्य में पेशकार हैं—इनपर वर्त्तमान महाराज बड़ी कृपा रखते हैं और इनका विश्वास भी बहुत करते हैं। इनके दो बालक पुत्र हैं—विष्वक्सेन मिश्र और महासेन मिश्र।

[५] स्वर्गीय पंडित अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य का जन्म यद्यपि काशी में हुआ था, तथापि कार्यकाल इनका बिहार के स्कूलों में ही व्यतीत हुआ। अन्त में ये पटना-कालेज में संस्कृत तथा हिन्दी के प्रोफेसर नियुक्त हुए; किन्तु थोड़े दिनों के बाद इनका देहान्त हो गया। संस्कृत तथा हिन्दी दोनों ही में गद्य तथा पद्य लिखते और धाराप्रवाह बोलते थे। संस्कृत में 'शिवराज विजय' इनका बड़ा ही अनुपम ग्रंथ है। सम्पूर्ण 'बिहारी-सतसई' पर इनकी रची कुंडलियाँ हैं। दुःखद्रुम-कुठार, साहित्य-नवनीत, गद्य-काव्य-मीमांसा आदि अनेक ग्रंथ इनके प्रकाशित हो चुके हैं। इनके पितृव्य स्वर्गीय पंडित राधावल्लभ जोयसीजी डुमरावँ में निवास करते थे। उन्हीं के सम्बन्ध से ये सदा डुमरावँ में आया-जाया करते थे। ये मेरे पिताजी के परम मित्र थे; इसलिये

पं० अम्बिकादत्त व्यास

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

[पृष्ठ १४८—१४९]

पं० गोविन्दनारायण मिश्र

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

[पृष्ठ ८३]
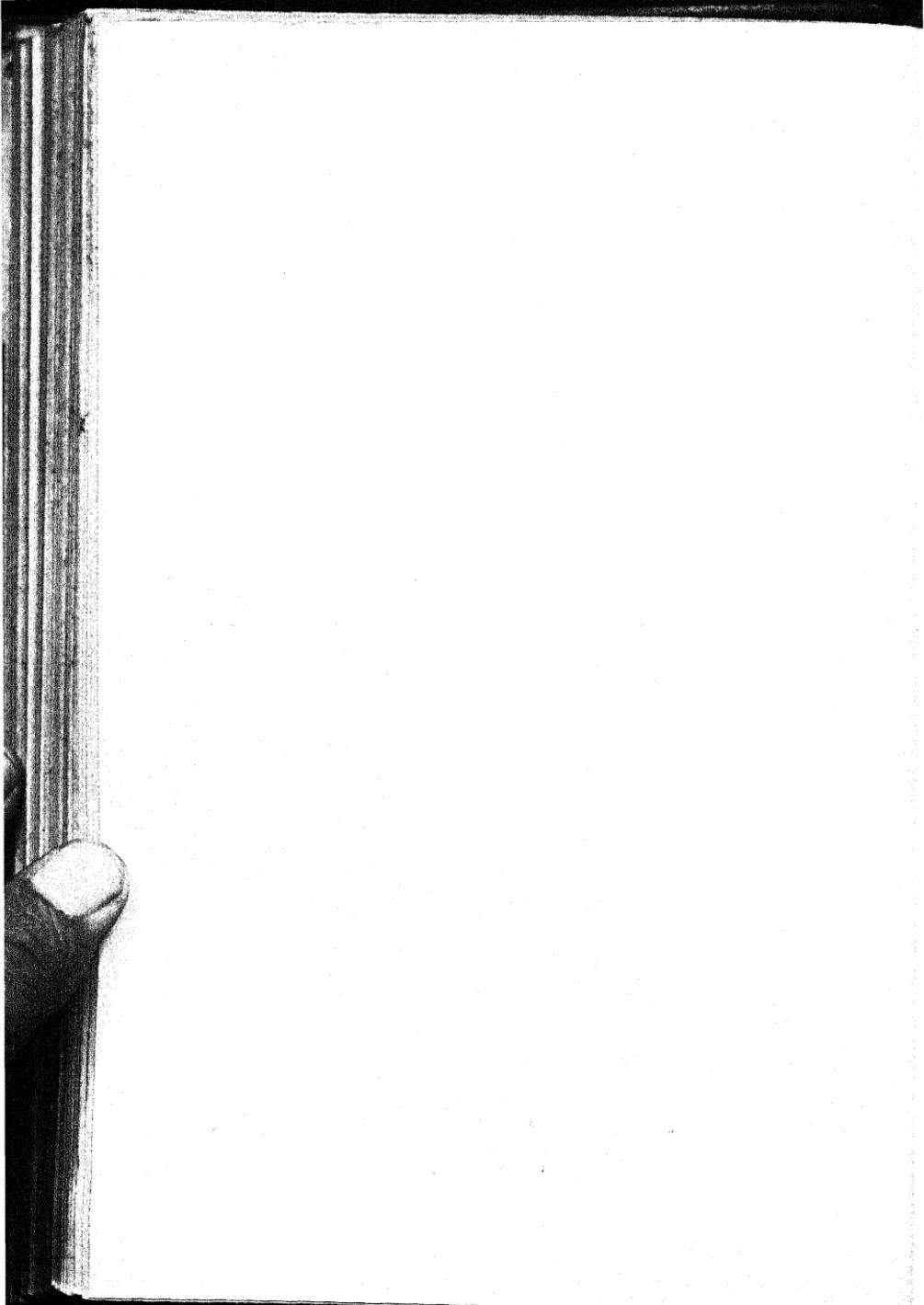
मुझपर इनकी बड़ी कृपा रहती थी। ये क्वीन्स कालेज (काशी) के प्रोफेसर महामहोपाध्याय पंडित राम मिश्र शास्त्रीजी के शिष्य थे। गौडविप्र वैष्णव थे। काशी के मानमन्दिर-घाट महल्ले में इनका मकान और इनके वंशधर वर्त्तमान हैं। हिन्दी-जगत् में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद इनका स्थान है। इन्होंने अपनी जीवनी आप ही लिखी है, जो 'सुकवि-सत्सई' ('बिहारी-सत्सई' की कुंडलियाबद्ध टीका) में छपी है। इनका सिद्धान्त था कि अपनी जीवनी आप ही लिखना ठीक होता है।

[६] जब मेरी अवस्था उन्नीस वर्ष की थी तब मैं काशी में पढ़ता था। उसी समय पूज्यपाद पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी अपने भगिनीपति (बहनोई) पंडित जगन्नाथजी से मिलने के लिये आये थे। मैं बड़ी उत्कंठा के साथ द्विवेदीजी से मिलने के लिये गया। उस समय द्विवेदीजी की अवस्था अठाइस वर्ष की थी। शरीर भव्य, गौर, कुछ स्थूल, फुर्तीला और ब्रह्मतेज से दीप्यमान था। वचन से माधुरी, सहानुभूति, सत्यता और निष्कपटता टपकती थी। उस समय आपने निज-रचित 'कुमारसम्भव' के हिन्दी-पद्यानुवाद के कुछ छन्द सुनाये। बड़ी गम्भीरता के साथ पद्य पढ़ते थे, जिसका अनुकरण (नकल) मैं बहुत दिनों तक अपनी मित्र-मंडली में करता रहा। जब आप 'सरस्वती' के सम्पादक हुए तब आज्ञा देकर मुझसे अनेक लेख लिखवाये। जिस समय 'भारतमित्र'-सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त तथा

द्विवेदीजी से साहित्यिक विवाद छिड़ा था, उस समय मैं खुल्लम-खुल्ला संस्कृत और हिन्दी में पद्यात्मक लेख लिखकर गुप्तजी का पक्ष-समर्थन करता था। किन्तु गुप्तजी के स्वर्गवासी होने के अनन्तर द्विवेदीजी ने, मेरे सब अपराधों को भूलकर, मुझे अपना लिया। ४ नवम्बर १९३८ का आपका कृपापत्र अंतिम पत्र था; क्योंकि २१ दिसम्बर (१९३८) को आपका शरीरपात हो गया। आप हिन्दी के नवयुग-निर्माता थे। आपने हिन्दी-भाषा के गद्य और पद्य का भली भाँति परिष्कार किया। खेद है कि मेरी यह पुस्तक आचार्य द्विवेदीजी न देख सके।

[७] मैं रुग्ण होने के कारण बहुत-से साहित्यिक संस्मरणों को नहीं लिख सका। कहीं-कहीं उनका सूत्र मिलेगा; पर उनका विस्तृत विवरण लिखने की शक्ति नहीं थी, और अब तो स्मृति अत्यन्त क्षीण होती जा रही है—केवल हरिनामस्मरण ही अवलम्ब है। अन्त में साहित्यसेवियों से हमारा यही सविनय अनुरोध है कि वे स्वयं अपना साहित्यिक संस्मरण लिखकर हिन्दी का साहित्य-भांडार सम्पन्न करें। तथास्तु।